साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत संस्कृत कहानी-संग्रह

इक्षुगंधा

लेखक एवं अनुवादक

अभिराज राजेन्द्र मिश्र

अनुक्रम

जिजीविषा

वही रात, वही दिन, वही संध्या, वही दुपहरी! दिशा-दिशा में भागम-भाग करती, नीले आकाशमंडल में इंद्रधनुष की रचना सी करती वही चिड़ियों की पाँत! दरवाज़े पर बँधी, कभी-कभार रँभाती वही मकरी गाय! घर, जंगल, आसपास, पड़ोस–सभी पहले जैसा ही दीख रहा है। केवल मैं बदल गई हूँ। पैरों की गति, साँसें, सपने–सभी पूर्णतः अधिकाधिक बदलते ही जा रहे हैं और अधिक क्या? मेरा अस्तित्व भी बदल सा रहा है ऐसा अहसास होता है मुझे।

रात में भरपूर नींद नहीं आती। दोनों आँखें बंद होते ही, दुर्भाग्यरूपी बाणों से बिंधे, पुत्र मानकर पाले गए मेरे स्वप्नरूपी मृगछौने, लाड़-प्यार रूपी कुशों का कौर सा माँगते हुए मेरे पास आते हैं। परंतु मंदभागिनी मैं क्या करूँ? नाव टूट जाने पर, तैरने का कितना ही प्रयत्न मैंने किया? हाय रे विधाता! परमेश्वर मेरा हितरक्षक नहीं हुआ। रस्सी के टूट जाने पर घड़े को कौन बचा पाता है?

बिछौने के ऊपर उतान लेटी हुई तपती, इसी प्रकार की चिंताओं का बार-बार स्मरण करती विरह-वियोग के आँसू, पहली बार ढार रही थी। अब तो उस बेचारी का यह रोज़-रोज़ का हाल था। सारा दिन कार्यालय में समय बिताकर, नाना प्रकार के दायित्वों में उलझी मनोवृत्ति के कारण अपनी व्यथा की फाँस (कील) को भुलाकर, जैसे ही वह घर पहुँचती थी, वैसे ही कायाकल्प का अनुभव करती, कोई और ही बन जाती थी।

–बेटी तपती! क्या सो गई हो? स्नेहपूर्वक यूँ पूछती पास के कमरे में स्थित माँ का कंठस्वर सुनाई पड़ा।

–माँ! नींद नहीं आ रही है। पलकें बंद कर लेने पर भी दोनों आँखें सोना नहीं चाहतीं। लगता है कि आँखों में ही भोर हो जाएगी।

–घबराने की बात नहीं। बेटी! यदि अकेलापन अच्छा न लग रहा हो तो क्षण भर के लिए इधर आ जाओ।

–यदि ऐसा है तो चुपचाप सो जाओ। माँ यूँ कहती थी।

परंतु कौन सोता है? सिनेमा की रील के समान बीती घटनाओं की कतार उनींदी आँखों में उभर रही हैं। हृदयरोग के दौरे से असमय में ही पिताजी चल बसे। सेंध लगाने वाले चोर की तरह यह रोग जाने कहाँ से आ धमका। दवा सेवा करने से पूर्व ही पिताजी अनंत निद्रा में खो गए। दयालु स्वभाव वाले मित्रगण, क्षणभर के लिए दैव की निंदा कर, परिवार को ढाँढस बँधाकर, जैसे आए थे वैसे ही चले (भी) गए। परंतु न पार किया जा सकने वाला पितृशोक का समुद्र तो (अब) तपती को ही पार करना था।

आँसुओं में भींगे मुँह वाली तपती स्मरण करती है अपने अतीत का। नवनीत जैसी कोमल सोलह वर्ष की युवती! माँ की दीनता, दुधमुँहे छोटे भाई का पोषण और छोटी बहन की शिक्षा-समस्या! यह सब तपती को ही करना था। तपती ने कितना ही प्रयत्न नहीं किया? परंतु कौन सुनता है? गुण, शिक्षा एवं शील की कहीं भी कदर नहीं।

सर्वत्र, बस यौवन का ही मोल था। बेचारी तपती कहाँ छिपाए अपनी खरे कंचन जैसी काया को? विशाल नीलकमल-सरीखे नेत्र, पके विंबफल के समान (अरुण) अधर-पुष्प! सौंदर्यरूपी सरोवर को पार कराने वाले उडुप (औंधे मुँह दो घड़ों को बाँध कर बनाई गई नाव-घंडई) जैसे समुन्नत पयोधर-युगल। किन्नरी जैसी तपती अपने रूप-लावण्य की संपद् को कहाँ छिपाती!

घर में मुट्ठी भर भी अन्न नहीं बचा था। शीला की पढ़ाई बीच रास्ते में (ही) रुक गई थी। सोम भी दूध के अभाव में निस्तेज हो चला था। अब कितना कुछ और सहने को था? नौकरी तो करनी ही है। जिस किसी भी प्रकार से अथवा मूल्य से प्राप्त हो सके। संतप्त तपती ने नौकरी ढूँढ़ निकालने के लिए संकल्प कर लिया।

दूसरे ही दिन माँ की हथेली पर सौ रुपये का नोट रखती तपती ने कहा–माँ! मुझे नौकरी मिल गई है। यह वेतन का एडवांस है। शीला फिर से स्कूल जाएगी। तुम भी माँ! सोम के लिए, पहले की ही तरह दूध ले आओ।

–परंतु बेटी तपती! माँ को जानने की इच्छा होती है।

–रहने दो माँ! कोई सवाल मत पूछो। जैसा कहा है, वैसा करो।

विमला चुप्पी साधकर दूसरे कामों में लग गई। परंतु कतार बाँधे सवाल उसके अंतःकरण को मथने लगे। इतनी सरलता से नौकरी मिल कैसे गई? तपती को कौन नौकरी मिल पाई है? कहाँ काम करती है? किस प्रकार का काम करती

है! अथवा कितने समय वाला है उसका काम! विमला के मन में तूफ़ान सा उठा। जो भी हो, देर नहीं करनी है। समाधान अवश्य ही करना है। माँ, भाई और बहन के प्रेम में लड़खड़ाती जीवनेच्छा वाली तपती ने कोई अनर्थ तो नहीं कर डाला?

दुपहरिया के फूल-सी कोमल है मेरी बिटिया। सूरज की धूप भी मेरी बेटी के अंगों को (पिता के जीवित रहते) भरपूर नहीं छू पाती थी। भला वह कैसे किसी ऑफ़िस में बिना अन्न-पानी के, दस बजे से प्रारंभ कर चार बजे शाम तक रह पाएगी–बिना घरवालों के? स्वार्थ में डूबी हुई मुझ निर्दयी (माँ) को धिक्कार है। नाम भर की ही 'माँ' हूँ मैं। संतान को जन्म देने का कैसा मूल्य वसूल रही हूँ। अरे, मेरा तो भीख माँग लेना भी तपती की तनख़्वाह से कहीं अच्छा था।

–बेटी तपती! कहाँ है तेरा ऑफ़िस? कल मैं भी तेरे साथ ही चलूँगी। विमला ने अगले दिन की संध्या में पूछा।

तपती ने बिजली का झटका जैसा लगने का अनुभव किया–क्या माँ के मन में शंका पैदा हो गई है?

क्या किसी प्रत्यक्षदर्शी (जानकार) चुगलखोर ने रहस्य तो नहीं उगल दिया? मन में यूँ अटकलें लगाती तपती ने कहा–माँ! मेरे कार्यालय से तुम्हें क्या लेना है?

–बेटी! लेना-देना क्यों नहीं है? मैं तेरी माँ हूँ।

–माँ! किसी ने ऊँचा-नीचा तो नहीं बक दिया?

–नहीं, नहीं बेटी! स्वाभाविक है मेरा यह सवाल।

परंतु तुझे यह भ्रम क्यों हो रहा है? अरे, तेरे तो दोनों गाल कांतिहीन हो उठे हैं? तेरा अधर-होंठ बेहद काँप राह है? तपती। मेरी लाडली! मैं समझती हूँ मन में कुछ और रखकर तू बात कर रही है। तो मैं भी तेरे सिर की कसम खाकर कहती हूँ कि सच्चाई को बिना सुने मैं पानी भी नहीं पियूँगी।

टूट गया तपती के धीरज का बंधन। किस मुँह से बच्ची सच्चाई को उगले? कैसे यह बताए कि किसी कामलोलुप कार्यालय के अधिकारी की भूख और प्यास बुझाकर ही वह नौकरी पाने में कामयाब हो पाई है? यौवन के अतिरिक्त उसके पास और थी ही क्या नौकरी पाने की योग्यता? अब वह माँ की गोद में सोने वाली तपती नहीं रही। किसी की पर्यंकशायिनी बन चुकी है वह।

चकनाचूर हृदय तथा भस्मीभूत सपनों वाली तपती करुणा में डूबी सी होने लगी। माँ के कंधे पर सिर टिका कर उसने बिना कुछ बताए ही सब कुछ भलीभाँति प्रकाशित कर दिया।

—माँ! कलंकिनी वन गई हूँ। बुरा-भला कहो मुझे। फटकारो मुझे। माँ मुझे घर से वाहर निकाल दो मुझे। माँ! मैंने तुम्हारी कोख को कलंकित कर दिया। प्रातःस्मरण करने योग्य पिताजी के पवित्र नाम को मैंने मटियामेट कर दिया। परंतु सोम के मरुभूमि-जैसे (उदास) मुँह और शीला की विषादग्रस्त आँखों को निहारने वाली मेरे पास और चारा ही क्या था? भाई-वहनों की भुखमरी से अधिक मूल्यवान् था क्या मेरा यौवन?

भर्राए कंठ वाली तथा निरंतर झरते आँसुओं से गीले मुख वाली माँ ने कुछ नहीं कहा। पश्चात्ताप की आग में वेहद जलती-भुनती केवल निष्ठुर विधाता को कोसने लगी—अंतर्यामी प्रभो! देख लिया मैंने आपका न्याय! अंकुरित होते हुए सुख के विरवे को देख नहीं पाते हो। उठे हुओं को गिराते हो? पापियों को वरक्कत देते हो? सज्जनों को हर प्रकार से अपमानित करते हो? अरे निर्दय! कृपाहीन परमेश्वर! तपती के हृदय का संताप भी तुम अनुभव नहीं कर पाए? गंगाजल को शराव वना दिया तुमने! सिंदुवार की पुष्प-मंजरी सौंप दी काम-पिशाच को? अव कहाँ जाऊँ मैं? भला, कैसे दिखाऊँ किसी को (अपना) कालिख लगा मुँह? क्या कहेंगे लोग?

विमला सोचती है—कल ही आएगा विवेक। वड़ी जतन से तपती के लिए यह वर ढूँढ़ा है। वेटी के हाथ पीले करके ही सुख की नींद सो पाऊँगी। परंतु वेटी से जुड़ी इस घटना के अधःपतन से तथा समाज में चुगलखोरी की मुखरता से भला अव क्या हो सकता है?

खट्...खट्...खट्...। कोई किवाड़ पीट रहा है। इस शाम की वेला में कौन हो सकता है? विमला अनुमान नहीं लगा पाती। तपती को आदेश देती है देख वेटी! कौन आया हुआ है?

तपती के जाने से पहले ही, अर्गला-विहीन द्वार को खोल कर कोई सुदर्शन युवक कमरे में प्रवेश करता है और सकपकाई आँखों वाली विमला से कहता है मैं समझ रहा हूँ कि आपने पहचाना नहीं। तय किए गए समय (कल) से पहले ही आ गया हूँ जो। वाराणसी से लौटा हुआ हूँ।

—वेटे! क्या तुम विवेक हो?

—हाँ, ठीक पहचाना आपने। युवक वोला। तपती को स्नेहपूर्वक तथा ललक के साथ देखकर पूछने लगा—

—माँ! यह तपती है क्या, जिससे मिलने आया हूँ मैं?

—हाँ वेटे! तपती ही है। विमला वोली।

—माँ जी! वड़े घटिया पड़ोस में रहती हो। मैंने आपके घर का हुलिया पूछा। क्या वताऊँ? कुछ नीचों ने न जाने क्या-क्या कच्ची-पक्की भूँकना शुरू कर दिया। ख़ैर, उससे क्या होता है? तपती मुझे पसंद है।

विमला की रुकती साँसें लौट सी आईं। लज्जा के वोझ से दवी-दवी सी तपती भी भीतरी कमरे में चली गई। युवक ने पुनः कहा—माँ जी! क्या मैंने कोई अशिष्टता का आचरण किया? यदि ऐसा कुछ हो गया हो तो मुझे माफ़ करना। वचपन से ही मुँहफट रहा हूँ मैं। रात में ही चला जाऊँगा। क्या खाना नहीं खिलाओगी?

विमला ममता में डूव रोने लगी और वोली—वेटे! माँ की आज्ञा से ही (अव) जा पाओगे। प्राप्त हो गई है मुझे जीने की आकांक्षा।

सुखशयितप्रच्छिका*

अस्पताल के इमर्जेंसी वार्ड में चारपाई पर लेटे हुए मैंने जब चेतना (होश) का अनुभव किया तब भी मेरी आँखों में गहवर अँधियारा-सा भरा हुआ था। इतना तक भी याद नहीं कर पाया कि सड़क पर अचानक ही दुर्घटना कैसे घट गई? और कैसे मैं सड़क को पार करता हुआ, सामने से आते हुए तेज रफ्तार वाले ट्रक को न देखता हुआ, उसके द्वारा रौंद दिया गया? किसने मुझे अस्पताल पहुँचाया अथवा किसने खून देकर मुझे जीवित रखा, यह सब भी नहीं समझ सका। परंतु कुछ समय के बाद, जब होश में आने के बाद मैंने अपने इर्द-गिर्द भलीभाँति देखा तब नीलकमल के समान एक जोड़ी आँखों को, अपनी ओर केंद्रित अनुभव किया।

वे एक जोड़ी आँखें जिस कोमल काया में जड़ी थीं, वह थी कोई बीस वर्ष की उम्र वाली नवयुवती! उसके पास ही लेटा हुआ था कोई जर्जर बूढ़ा आदमी–सत्तर बरस का! वार्द्धक्य से पीड़ित होते हुए भी उस बूढ़े में जीने की आकांक्षा, साफ़ दीख रही थी। पकी भौंहों वाली उसकी दोनों आँखों में दीप्ति (चमक) बेहद साफ़ थी। मुझे होश में आया हुआ तथा उठा हुआ देखकर, बूढ़ा व्यक्ति भी तकिया के सहारे, दाहिनी करवट के बल उठा और मुस्कान भरे चेहरे से बोला–जय हो, जय हो जगन्नियंता (परमेश्वर) की। बेटे! भगवान् की कृपा से पुनः जीवित हो। अब खतरे से बाहर हो। आयुष्मान् भव।

मैंने (भी) मुस्कान भरे चेहरे के साथ, हाथ जोड़कर प्रणाम किया। मन में तरंग-सी उठी–यह भला आदमी कौन है? मुझमें इतना स्नेह क्यों है? रोग-व्याधि से ग्रस्त हज़ारों जनसमुदाय वाले इस अस्पताल में कौन पूछता है किसको? सब लोग बस, अपने ही नाते-रिश्तेदार को भला-चंगा देखने की इच्छा से प्रयत्नशील हैं। नब्बे वर्ष वाली भी मेरी दादी, जैसे भी संभव हो, जीवित रहे। चाहे हज़ार प्रार्थना पड़े अथवा लाख! वह बच जाए। परंतु बगल वाली खाट पर पड़ा किसी गरीब आदमी का कोई दुधमुँहा बच्चा भी, जो घर के अँधेरे को दूर करने वाले

* सुख-दुःख पूछने वाली, परिचारिका

दीपक के समान है, रक्त के अभाव में अथवा खून खरीदने योग्य धन के अभाव में ही मरता है तो मर जाए। ऐसी मानसिकता वाले विवेकशून्य स्वार्थी लोग ही यहाँ (अस्पताल) हैं।

तो फिर, भयावह स्वार्थांधता के इस बवंडर में खड़ा यह कौन धैर्यरूपी हिमाचल है जो मेरी नीरोगता चाहता है? मुझे चिरंजीवी देखना चाहता है? मेरे ऐसा सोचते ही सोचते, वे नीलकमल-सरीखी एक जोड़ा आँखें अकस्मात् ही स्मृतिपथ में उतर आईं। सच तो यह था कि वृद्ध पुरुष के साथ बातचीत करते, ध्यान न देने के कारण, मैं यह देख ही नहीं पाया कि वह तरुणी प्रारंभ से ही, अपलक आँखों से मुझे निहारती खड़ी थी। जैसे ही वार्तालाप से छूटे मैंने उसकी ओर देखा, एक नन्ही मुस्कान बिखेरती उसने सिर नीचे झुका लिया।

–बेटी शुभदा! क्यों कठपुतली जैसी इस तरह खड़ी हो? देखो तो ज़रा। बच्चे को होश आ गया है। अँधेरा चीर कर सूर्योदय हो चला है। तो फिर क्यों नहीं देती केले के फल या फिर सेब, छुरी से काट कर?

वृद्ध पुरुष के स्नेह-सौजन्य भाव से, बलात् वशीभूत किया गया मैं कुछ बोल नहीं पाया। क्या कहता? क्या उत्तर देता? बात का उत्तर बात से, गाली का उत्तर गाली से, प्रेम का उत्तर प्रेम से और सौजन्य का उत्तर सौजन्य से दिया जाता है। परंतु अभी तो हम दोनों का परिचय-प्रसंग ही अधकचरा है तो फिर सौजन्य ही किस प्रकार का और किस मात्रा का हो?

इस बीच में ही शुभदा सेब का फल काट कर चीनी मिट्टी की तश्तरी में रखकर ले आई। बिना कुछ कहे ही, लोहे की तिपाई पर तश्तरी रखकर, उसने मेरे सामने कर दिया। अब चोरदृष्टि (कनखियों) से मैंने उस सुवर्ण-प्रतिमा को निहारा। गुड़हल के फूल जैसा लाल उसका अधर-प्रवाल। फेन के सवाल धवल दोनों कपोल-मंडल। भारत के मानचित्र में विद्यमान कन्याकुमारी के त्रिकोणभाग का अनुकरण करती सुंदर ठुड्ढी और संकुचित नीलकमल-युगल के समान दोनों नयन।

–शुभदा! पढ़ती हो? मैंने पूछा।

–यह नहीं बोलेगी। वृद्ध पुरुष ने कहा। बेटे! अब तुम्हीं देखो। इतनी सयानी हो गई है। आयु की दृष्टि से भी, इसी फागुन महीने में बीसवें में प्रविष्ट हो गई है। डिग्री कॉलेज में बी.ए. द्वितीय वर्ष की कक्षा में पढ़ती है। परंतु इसकी जीभ को ही लकवा सा मार गया है। कितना ही समझाया-बुझाया सबके सामने, अकेले में भी। परंतु कौन सुनता है? देखो बेटा! वह जमाना बीत गया जब राजरानियाँ असूर्यम्पश्या (महल में सीमित) हुआ करती थीं और फिर, बाहर न

निकलने का यह नियम भी मात्र राजरानियों के लिए था। (परंतु) सामान्य घरों की युवतियाँ तो उस युग में भी कर्मक्षेत्र में उतरती थीं। आज के जमाने में तो सब कुछ उल्टा-पल्टा हो चला है। अब तो बेटे-बेटियों के बीच कोई भेद ही नहीं रहा। आज तो बेटी भी नौकरी-पेशा है। शासन तंत्र में, संस्था में, कार्यालय में, घर की दूकान में–सर्वत्र महिलाएँ कार्यरत हैं।

देखो बेटा!... ओह पालतू सुग्गे की तरह यह मैं क्या लगातार 'बेटा-बेटा' रटता जा रहा हूँ? क्या नाम है तुम्हारा? वृद्ध पुरुष ने पूछा।

–समीर नाम है मेरा। समीर शुक्ल।

सुंदर, सुंदर! जीते रहो बेटे! प्यारा नाम है। मैं समझता हूँ कि तुम्हारे माता-पिता बड़े ज्ञानवान् तथा अत्यंत संवेदनशील रहे होंगे। अन्यथा समीर जैसा नाम आजकल प्रायः कहाँ चल पाता है? गाँवों में तो प्रायः मटरू, मँगरू, लखन और चक्खन-सरीखे तथा शहरों में मुकेश, रमेश, महेश आदि ही चलते हैं। परंतु समीर नाम तो सार्थक प्रतीत होता है। मैं तो मानता हूँ कि समीर के वेग से ही सड़क पार करते हुए तुम, ट्रक की टक्कर से बुरी तरह आहत हो गए। बोलो, था ऐसा ही या नहीं?

इसी तरह की ढेर सारी बातें कहते ही कहते वृद्ध पुरुष ने हँसना प्रारंभ कर दिया। परंतु माता-पिता का उल्लेख मात्र हो जाने से, आपबीती का स्मरण करता हुआ मैं सजल-नयन हो उठा। मुँह फेरकर, अँगौछे के छोर से आँसुओं को पोंछ कर, नकली हँसी होंठों पर बिखेरता, मैं एक बार फिर पूछ बैठा शुभदा! देखो, पिताजी क्या कह रहे हैं? क्या अब भी नहीं बोलोगी? चलो, तुम ही बता दो कि स्नातक कक्षा में किन विषयों को पढ़ रही हो?

–संस्कृत, अंग्रेजी और संगीतशास्त्र। बड़ी कठिनाई से शुभदा बोली। उसकी वाणी के प्रकट होते ही होते अधखिले फूल के फैलाव सी मुस्कान भी अधर-पटल पर फैल गई।

बीच में ही आ गई परिचारिका (नर्स) उसका स्वभाव बेहद (नीरस) था, यह मैंने पहले ही सुन रखा था। इसलिए उसके आने के साथ-ही-साथ, मैं सावधान हो उठा। अपनी वाचिक, शारीरिक तथा वेषभूषा की नाटकीयता से दीनता (विवशता) तथा रुग्णजनोचित शिथिलता को प्रदर्शित करता हुआ।

–लाल रंग वाली दो गोलियाँ तथा पीले रंग वाली एक, पानी के साथ ले ली या नहीं? नर्स ने अत्यंत कड़कती आवाज़ में पूछा।

–सिस्टर! यथावसर मैंने सब ले लिया। मैंने उत्तर दिया।

ठीक है। अब दस बजे ही माथे की पट्टियाँ बदली जाएँगी। सफाई भी की जाएगी। इसलिए, उस समय आप खुद ही आ जाइएगा। पट्टी वाले कमरे में। आपके घर से कोई आया हुआ है या नहीं?

–सिस्टर! जैसा कहा है (वही) करूँगा।

–यह मेरे सवाल का जवाब नहीं है। सिस्टर नर्स बोली।

–सिस्टर! सूचना तो भेजी है। कोई आ ही रहा होगा।

'सिस्टर' कही जाती हुई वह कड़क नर्स आँधी के वेग से चलती बनी। लंबी साँस छोड़ते हुए सोचा मैंने–झूट बोलकर कितने समय तक (अपनी) रक्षा हो पाएगी? कौन आएगा भला? किसके लिए सूचना भेजी है मैंने? यह सब ठीक नहीं है। नर्स को सब कुछ सुस्पष्ट बता देना चाहिए मुझे (कि मेरा अपना कोई नहीं, मैं अकेला हूँ)।

संध्यावेला में विस्तरे से उठ कर, अस्पताल के सामने वाले छोटे बगीचे में गया। हरी-हरी दूबों से ढँकी, बगीचे की ज़मीन, ढेर सारे रंगों वाले गुलाब के फूलों से भरी-पूरी, आँखों को बाँध लेने वाली शोभा सिरज रही थी–चारों ओर! आसमान में, गीता में बताए गए कर्मयोग को चरितार्थ करती बगलों की पाँत, घोसलों की ओर सुखद उड़ान भरती परिलक्षित हो रही थी। बस, सहज भाव से ही, बगीचे के कोने में निर्मित, सीमेंट से प्लास्टर किए गए एक चबूतरे पर बैठ गया। उन्मुक्त मन डूब गया अतीत की राहों में। सिनेमा की चित्र वीथियों जैसे कालखंड आते-जाते रहे।

–दादा जी आपको बुला रहे हैं। बीच में ही मैंने सुरीले कंठ की पुकार सुनी।

–अरे शुभदा! तुम! आओ, बैठो न। वह वृद्ध पुरुष तुम्हारे दादा जी हैं?

–और क्या।

–मैंने भी, पहले यही सोच रखा था। (उनकी) उम्र से भी यही अनुमान होता है। दादा जी किस रोग से परेशान हैं?

–बुढ़ौती में कोई एक रोग थोड़े न होता है? शुरुआत में तो साँस भर फूलती थी। अब पाचनतंत्र बिगड़ गया है। भूख समाप्त हो गई है। देह में खून की कमी हो गई है। आँखों की रोशनी भी क्षीण हो चली है। सारे रोग, बस उनकी शरीर में ही हैं।

–घर के और सदस्यगण कहाँ हैं? मेरा मतलब है कि तुम्हारी माँ, पिताजी, चाचा अथवा और कोई। एक ही साँस में मैंने पूछ लिया।

शुभदा चुप रह गई। देखा मैंने कि बिना अवसर के बरसने वाली आँसुओं की बदली शुभदा की आँखों में घिर आई थी। बिना कुछ जवाब दिए ही उसने रोना शुरू कर दिया। मुझे तो मानो काठ मार गया। यह क्या किया मैंने? ऐसा लगा मानो उस बाला के मर्मस्थान पर मैंने चोट कर दी। एक ओर तो यह करुणा और दूसरी ओर (चोट का) पछतावा और फिर उससे भी तीसरी ओर शुभदा के स्वजनों के विषय में जानने की दुर्निवार उत्कंठा। इस प्रकार, क्षण भर में ही कितने ही भाव पैदा हो उठे दल बाँध कर।

वाणी को मक्खन जैसी नरम-चिकनी बना कर मैंने कहा–शुभदा! माफ करना मुझे। ऐसा लगता है मैंने न पूछने लायक बात पूछ ली। परंतु विश्वास करो, यह सब मैंने पहले से नहीं सोच रखा था और न ही तुम्हें दुखी करने के लिए पूछा मैंने।

–आप ऐसा क्यों कहते हैं? आपने मेरा कोई अप्रिय नहीं किया। मैं तो बस, बिना किसी कारण के ही रोने लगी हूँ।

–शुभदा! क्या क्षण भर के लिए भी मेरे पास नहीं बैठोगी? मैंने स्नेहपूर्वक निवेदन किया। मेरे अनुनय के साथ ही वह बैठ गई।

–अब बोलो। क्यों रो रही हो? देखो शुभदा! तुमसे भी कहीं बड़ा है मेरा दुःख! मैं भी अपनी पीड़ा बताऊँगा। परंतु पहले-पहल तो मैं तुम्हारी ही व्यथा सुनना चाहता हूँ।

–आपने माँ के बारे में पूछा बस इसीलिए उसकी याद आ जाने के कारण, मुझे ज़बर्दस्ती रोना आ गया।

–शुभदा! तो क्या तुम मातृसुख से वंचित हो?

–हाँ, पिताजी को तो एकदम ही याद नहीं कर पाती।

सुना है कि मैं एक वर्ष की थी, तभी मुझे और माँ को छोड़कर पिता जी दिवंगत हो गए। भारत और चीन के युद्ध के समय मेरे पिताजी हिमालय-क्षेत्र में नियुक्त थे। वहीं लोहा लेते हुए वह वीरगति को प्राप्त हो गए। विधवा हो गई मेरी माँ। दादा जी तो भूतपूर्व सैनिक और महान् राष्ट्रभक्त हैं ही। अनेक बार उन्होंने युद्ध किया तथा शौर्य पुरस्कार अर्जित किए। मेरी ही तरह मेरा एकलौता बेटा भी प्राणपण से राष्ट्रभूमि की सेवा करे इसी दृढ़ निश्चित संकल्प के कारण दादा द्वारा मेरे पिताजी भी भारतीय सेना में भर्ती कराए गए। भर्ती होने के बाद ही अपनी ट्रेनिंग और परीक्षा की गुणवत्ता (रिकॉर्ड) के कारण वह सेकेंड लेफ्टीनेंट के पद पर आसीन हो गए।

पिताश्री के दिवंगत हो जाने पर, जीवित रहती हुई भी मेरी माँ म्रियमाण हो उठी। उसके सुख-संतोष के लिए दादा जी ने कितने ही प्रयत्न नहीं किए, परंतु माँ के चेहरे पर हँसी नहीं लौट सकी।

वह रुग्ण हो उठी। अँधियारे पाख की चंद्रकला सी निरंतर मंदप्रभ होती, एक अमावस्या के दिन वह भी सोई हुई, नहीं ही उठी। तब मैं बारह साल की थी।

तभी से मैं दादा जी के सहारे हूँ। वही माँ है, वही पिता भी हैं। वही (मेरे) सब कुछ हैं। मुझसे अतिशय स्नेह करते हैं। एक क्षण के लिए भी (मुझे) अकेली नहीं छोड़ते। मुझको ही (अपना) बेटा मानते हैं। अपना वंशधर (वारिस) घोषित करते हैं। रसोई में भी मेरे साथ भोजन पकाते हैं। बचपन में मुझे साइकिल पर बैठा कर स्कूल पहुँचाया करते थे। पहले से ही प्रतीक्षारत, स्कूल बंद हो जाने पर, उसी तरह मुझे घर भी ले आते थे। गोदी में लेकर सोया करते थे। सवेरे उठकर, नाश्ता बनाकर ही, मुझे जगाते थे। समाज और राजनैतिक क्षेत्र में दादा जी की बड़ी ख्याति है। शासन से उन्हें ताम्रपत्र-प्रशस्ति भी प्राप्त हुई है। और कोई दुःख (मुझे) नहीं है। परंतु माता-पिता के विछोह-वश यह संसार सुखों से शून्य ही प्रतीत होता है।

जब से आप (अस्पताल में) आए हैं तभी से दादा जी अत्यंत चिंतित हैं। आपकी बेहोशी देखकर, वह बच्चे की तरह अस्थिर हो उठे। बार-बार मुझसे कहते रहे–शुभदा! अपने ख़ानदान का चिराग वह युवक जब होश में आ जाए तो इसके गाँव-घर का पता लगाकर तुम इसके पिता को सूचित कर देना। मेरा अनुमान है कि इसी प्रसंग में कुछ कहने के लिए आपको बुला रहे हैं।

शुभदा की व्यथा को भलीभाँति सुनने के बाद मेरी व्यथा तो पंछी बनकर अनंत आकाश में फुर्र हो गई। अभी तक तो अपनी विपत्ति को ही मैं भारी-भरकम मान रहा था। परंतु शुभदा की पीड़ा जानने के बाद मैंने विचार किया–आह करुणावरुणालय परमेश्वर। असीम और अपरंपार है तुम्हारी महिमा! ऐसी कोमलांगी बाला, इस प्रकार का असह्य कष्ट झेल रही है?

परंतु दादा जी द्वारा, स्नेहपूर्वक पूछे जाने पर (मैं) क्या कहूँगा? पिता अथवा दादा को मैं उदाहृत करूँगा? मैं भी तो एकदम शुभदा जैसी ही हुलिया (परिचय-सूत्र) वाला हूँ। जो भी हो, पहले तो दादा जी के पास जाना चाहिए।

शुभदा को कुछ पहले ही भेज देने के बाद मैं दादा जी के पास पहुँचा। इस बीच शाम का धुँधलका भी कुछ अधिक ही प्रगाढ़ हो चला था। सारा-का-सारा

रोगियों का वार्ड दिन-सरीखा प्रतीत हो रहा था बिजली के बल्बों और ट्यूबों से।

मुझे देखते ही दादा जी बोले—समीर! कितनी देर से तुम्हारी खोज हो रही है। बेचारी शुभदा ने तुम्हें कहाँ नहीं खोजा?

बिना कुछ बताए ही चले गए? चाय एकदम ठंडी हो गई। तुम्हारे लिए पुनः ले आने का आदेश दिया है मैंने। अरे बेटे! न मैं तुम्हें पहले से जानता हूँ और नहीं तुम मुझे भलीभाँति जानते हो। यदि तुम्हारी चारपाई मेरे (थोड़ा) पास न रही होती तो मेरी वत्सलता भी (तुम्हारे प्रति) न पैदा हुई होती! हमारी भारतीय संस्कृति में तो सप्तपदी (सात कदम साथ चलने से बनी) मैत्री स्वीकार की जाती है। इसीलिए तुम्हारे प्रति मेरा चित्त अतिशय स्निग्ध हो उठा है।

अच्छा सुनो! आज के बाद मेरे साथ ही खाना खाओगे। अस्पताल का खाना कितना स्वादिष्ट होता है—इसे मैं नहीं जानता, ऐसा नहीं है। दाल होती है बस पानी मात्र जिसमें दाल के दाने गिनने भर को होते हैं। कोदों (मोटा चावल) का भाई प्रतीत होने वाला होता है भात और बकरियों के खाने लायक साग! न तीता, न मीठा। अनिर्वचनीय स्वाद से भरापूरा पकवान यहाँ बनता है। अतः जब तक यहाँ रह रहे हो, तुम्हारा भोजन भी शुभदा ही ले आएगी। इंतिजाम मैंने अच्छी तरह से कर दिया है। उस विषय में तुम्हें तिलभर भी चिंता नहीं करनी है। लो देखो, तुम्हारी चाय भी आ गई। पकड़ो, पियो!

दादा जी के उस अटूट व्याख्यान के चलते, उसे सुनने मात्र के अलावा मेरे लिए कुछ और करने योग्य था ही नहीं। यंत्रचालित सा मैं उठकर बैठ गया और चाय पीने लगा। चाय-पान समाप्त हो जाने पर दादा जी ने पुनः कहा—समीर! अपने विषय में तुमने कुछ नहीं बताया? क्या तुमने अपनी दुर्घटना के विषय में (अपने) पिताजी को सूचित कर दिया? या फिर मैं ही तार आदि के द्वारा संदेश भेज दूँ? मैं समझता हूँ कि पैसे भी नहीं होंगे। अतएव संकोच नहीं करना है। घर का पता बता दो। कल शुभदा ही सूचित कर देगी।

चंद्रोदय देख उच्छ्वसित हुए सागर के समान मेरे अंगों में भी श्रद्धा की लहरें सी उठने लगी। कितना निश्छल प्रेम है (दादा का) कितना निःस्वार्थ वात्सल्यभाव है? यह महापुरुष अत्यंत उदार आत्मा वाला है। झूठ बोल कर मेरे द्वारा ठगने योग्य नहीं है। इतना सब सोचते ही सोचते मेरी आँखें आँसुओं से विकल उठीं। (मेरा) मुँह भी सांध्य कमलपुष्प के समान शिथिल (संकुचित) हो उठा। पितामह ने सब कुछ देख लिया।

—बेटा समीर! क्या हुआ? यह क्या है? अरे चिरंजीव! रो रहे हो? अपने को असहाय मान कर रो रहे हो? या फिर माता-पिता की याद आने से और जन्मभूमि के विछोह से दुखी हो रहे हो? मुझ बूढ़े को देखो। इन्हीं दोनों अभागे हाथों से मैंने (अपने) प्राणप्रिय बेटे की अस्थियाँ गंगाजल में प्रवाहित की। इन्हीं हाथों से पुत्रवधू का दाह-संस्कार भी किया। फिर भी जी रहा हूँ। शुभदा के लिए जी रहा हूँ। बेटे! अनिश्चित है यह जीवनयात्रा? कुछ लोग एक ही साथ प्रस्थान करते हैं। परंतु बीच रास्ते किसकी साँस की डोर कहाँ टूट जाएगी, इसे कौन जानता है? फिर भी साधक व्यक्ति, सहयात्रियों के मोहवश, यात्रा से विरत नहीं होता। यात्रा के अंतिम पड़ाव तक तो चलना ही चाहिए। मेरे पास आओ। बताओ, क्यों रो रहे हो?

बनावटी खाँसी खाँसकर, गले की भर्राहट को दूर कर तथा स्वयं को नियंत्रित कर मैंने जैसे-तैसे कहा—दादा जी! अपने दुर्भाग्य को स्मरण कर रो रहा हूँ मैं। कोई और कारण नहीं। आप जैसे देव-पुरुष को झूठी बातों से छलने में मैं समर्थ नहीं हूँ। और यदि सच बोलूँ तो, बिना कारण ही आप पीड़ित होंगे। इसी दुविधा में अतिशय कष्ट पा रहा हूँ।

—ना, ना। संकोच नहीं। साफ-साफ कहो। सत्य तो सर्वोपरि होता है। पितामह ने कहा।

—दादा जी! मेरे जीवन की कहानी भी विलक्षण ही है। गोंडा (उ.प्र.) नाम के जिले में, कुआँनो नदी के किनारे मेरा जन्म हुआ। पड़ोसियों की शत्रुता से संतप्त तथा (उनके द्वारा) तरह-तरह से सताए गए धर्मभीरू मेरे पिता, अवसर ही, हृदयरोग से स्वर्गवासी हो गए। माँ के प्रयत्नों तथा कुछेक विश्वस्त शुभैषियों की सहायता से मैं उच्चशिक्षा प्राप्त करने के लिए इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में दाखिल हुआ। एम.ए. परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर, शोधकार्य की लालसा होने के बावजूद मैंने, माँ के कष्टों को न सह पाने के कारण, नौकरी पाने का प्रयत्न किया। इस समय तो कोई छात्रवृत्ति भी नहीं मिल रही और कोई दूसरा (आय का) साधन भी नहीं। बेचारी माँ तो एकदम अकिंचन हो उठी है।

बस, इसी संदर्भ में ए.जी.—ऑफिस के सामने सड़क पार करता हुआ मैं ट्रक से बुरी तरह टकरा गया। परमेश्वर की कृपा से ही जीवित हूँ। अन्यथा मेरी माँ तो जीते-जी ही मर जाती। आप सरीखे पूज्यचरण को प्राप्त कर इस समय अनुभव कर रहा हूँ कि आज भी भारत देश सर्वोत्कृष्ट ही है। अब आप ही राय दें कि क्या इस दुर्घटना की सूचना से माँ को व्यथित करने से पाप नहीं होगा?

उस बेचारी 'कुंती' को संतप्त करना व्यर्थ है। कुछ दिनों में भला-चंगा होकर ही उससे मिलने जाऊँगा।

मेरे ऐसा कहते ही कहते, दादा जी ने मुझे खींचकर अपनी बाँहों में भर लिया। मेरी जीभ जड़ हो उठी। स्नेह में दुलारे गए मेरे अंग प्रत्यंग शिथिल हो उठे। दादा जी मुझे बार-बार दुलार-पुचकार कर, चूम कर स्नेहपूर्वक बोले–बेटे समीर! तुम्हारी (यह) दुर्घटना भी मेरे लिए सुंदर (अनुकूल) घटना ही है। बेटे! भाग्य से ही (तुम) प्राप्त हुए हो। अपनी माँ को संतप्त करना ठीक नहीं। अस्पताल के ख़र्चे के ही लिए सेविका नर्स तुम्हें परेशान कर रही है। ख़ैर, कल मैं ही उससे कह दूँगा। समीर! मेरे लिए तो जैसी शुभदा है, वैसे ही तुम भी!

–अरे बेटी! तू भला कब आ गई? क्या तूने समीर की बातें सुनीं? रो क्यों रही है? दादा ने पूछा।

हम दोनों ने देखा कि शुभदा, हम दोनों के पीठ-पीछे रोती हुई खड़ी है। निःशब्द गति से आकर, न जाने कब से मेरी व्यथा-कथा को सुनती खड़ी थी वह। मेरी पीड़ा का बोझ हल्का हो गया। जो कुछ बताने के लिए प्रयत्न करना था वह सब सहज रूप में ही मुँह से निकल गया और शुभदा ने यह सुन भी लिया।

दादा जी का संकेत तो मैं समझ ही चुका था। वह मुझे जामाता के रूप में स्वीकार कर रहे हैं। यह भी अब एकदम साफ़ हो गया है उनकी बातों से। परंतु शुभदा के मन में क्या है? यह अभी भी मुझे जानना था। यद्यपि उसका रोना मेरे साथ (उसके) प्रणय-संबंध का बाधक नहीं था, प्रत्युत साधक ही था फिर भी (सच जानने की) उत्कंठा से मेरा मन विकल हो उठा।

सिर दुखने लगा था। फिर भी दादा जी की जिद के कारण थोड़ा-बहुत खा लिया। कानोंकान शुभदा ने भी सुन ली (सिर दुखने की बात) उसकी विकलता भी मैंने भाँप ली। न जाने क्यों मन में (शुभदा की विकलता से) आनंद जाग उठा। अब सपनों के पंछी विचारों के आकाश में उड़ने शुरू हो गए। न जाने क्या-क्या और कैसा-कैसा सोचता-विचारता मैं सो गया। मैं समझता हूँ कि मेरे ठीक बाद ही दादा जी भी सो गए। सारा-का-सारा अस्पताल ही नींद में डूबा हुआ था। केवल अपनी ड्यूटी पर तैनात नर्सें ही जागरण का कष्ट झेल रही थीं।

अचानक ही, किसी शीतल संस्पर्श से मेरी आँखें खुल गईं। देखा मैंने कि शुभदा धीरे-धीरे मेरा सिर सहला रही थी। मेरे जगते ही उसने बिजली की गति से दूर जाने का प्रयत्न किया। परंतु मैंने हाथ पकड़कर, स्नेहपूर्वक रोक लिया।

दादा जी की ओर इशारा कर उसने अपनी विवशता प्रकट की। जगी हुई नर्सों को भी दिखाया उसने। स्नेहपूर्वक पूछा भी।

–क्या अभी भी सिरदर्द परेशान कर रहा है?

–नहीं, नहीं। शुभदा! तुम्हारे हाथ की छुअन में कैसी दवा है कि छूने भर से ही पीड़ा ग़ायब हो उठी। मैंने मुस्करा कर कहा।

–मैं क्या जानूँ? उसने प्रेम का अमृत होंठों से बिखेरते हुए कहा।

–यदि लजाती हो तो किसलिए आई थी? मैंने शरारत के साथ पूछा।

–आपके सो जाने के बाद यह पूछने आई थी कि नींद ठीक से आई या नहीं? सबके सामने ऐसा कर नहीं सकी। शुभदा बोली।

–ख़ैर! ज़िंदगी भर के लिए जिसे थामना है तुम्हारा वह कर-कमल इस समय तो छोड़े देता हूँ तुम्हारी खुशी के लिए, ऐसा कहकर, सब लोगों द्वारा देख लिए जाने के भयवश मैंने होंठ के संकेत से ही चुंबन लेते हुए शुभदा का हाथ छोड़ दिया। शुभदा के प्रेम से रँगे मेरे हृदय में ऐसा लगने लगा मानो विधाता की सृष्टि में सर्वाधिक भाग्यवान् मैं (ही) हूँ।

अनामिका*

गंगा से मिलने वाले इस नाले के मुहाने पर, पौ फटते ही, बहुत बड़ी आदमियों की भीड़ एकत्र हो उठी थी। जितने मुँह, उतनी बातें! कोई विधाता को कोस रहा था। कोई आदमी की नृशंसता के लिए कुपित हो रहा था। कोई अभागे जमाने की ही निंदा कर रहा था (परंतु) घटना की असलियत जानने के लिए कोई प्रयास नहीं कर रहा था। केवल प्रचार ही सबका उद्देश्य था।

मॉर्निंग वाक मेरा रोज का काम है। ब्रह्मवेला में ही उठकर, शौचादिक संपन्न कर और हल्की-फुल्की कसरत कर मैं घूमने के लिए घर से निकलता हूँ। किस रास्ते से प्रस्थान करना है—यह सर्वथा अनिश्चित है। इस विषय में बस मन की तरंग का ही सहारा है। कभी एलेनगंज (मुहल्ले) से नागवासुकि की ओर फैले, पूर्वी दिशा में गंगा की ओर जाने वाले राजमार्ग से जाता हूँ तो कभी फुर्सत का समय रहने पर, बाँध रोड से नीचे उतर कर, गंगा तट की ओर जाने वाले ढलवे रास्ते से बँधवा महावीर-मंदिर तक फेले भूभाग में पर्यटन कहता हूँ।

पर्यटन करते समय, प्रायः मेरा भी नियम है स्वामी करपात्री जी महाराज की तरह मौनव्रत का निर्वाह करना। अक्सर किसी के साथ रहने पर घूमने का आनंद ही समाप्त हो जाता है। भगवान् का स्मरण करने, किसी सिद्ध मंत्र का (मन-ही-मन) जप करते रहने, बीती ज़िंदगी का अनुभव करने, प्रकृति की शोभा निरखने, गाँव-गिराँव का दृश्य देखने अथवा दिन में ही सपनों का तार बुनने की कौन कहे? प्रायः (सहचर के) अनचाहे, समुद्विग्न बनाने वाले, मुँह का स्वाद विगाड़ देने वाले पाप-कथाओं के वर्णनों से ही घूमने का सुख नष्ट हो जाता है। आपका मन तो डूबा हुआ है गंगा और यमुना की गलबाँही (संगम) देखने में और आपका दोस्त वता रहा है कि कल लयंकर त्रिपाठी अल्लापुर के चौराहे पर आपकी निंदा-शिकायत कर रहे थे। आप ललचाई आँखें से देख रहे हैं अनंत आकाश में उन्मुक्त विहार करती, दूब के समान हरे रंग वाली सुग्गों की पाँत और सहचर आपका, शांत बावड़ी में पत्थर सा फेंकता हुआ वाग्वज्र का संधान

* अभी जिसका नाम नहीं रखा गया, वेनाम लड़की

कर देता है—आपके रीडर-पद के चयन में विद्वेषी लोग जरूर विघ्न बाधा पैदा करेंगे।

इस प्रकार सहचर सनीचर वन जाता है। न उसको सुख मिल पाता है न आपको! बैल और भैंसे की जोड़ी की हाल हो जाती है। बैल तो खेत जोतने का उत्साह सँजोता है और भैंसा जोर मारता है तालाव के पानी में डुबकी लगाने के लिए। ऐसी स्थिति में, मनुष्य को अकेले ही पर्यटन करना चाहिए, यही मुझे पसंद है। खैर मूल प्रसंग पर आता हूँ। मैं कह रहा था कि उस भोरहरी वेला में भी मैं अकेला ही था।

अलोपशांकरी मंदिर से सरस्वती घाट की ओर जाने वाली सड़क से यमुना-तट तक जाकर मैं लौटा। उसके बाद (गंगा-यमुना) संगम तक जाकर, गंगा और भगवान अंजनीनंदन को प्रणाम कर, दारागंज की ओर जाने वाले मार्ग पर पर्यटन करता उस स्थान पर पहुँचा जहाँ की यह घटना है। बाँध रोड नामक उस सड़क पर, जहाँ नवनिर्मित लालबहादुर शास्त्री-सेतु है, जहाँ से उसकी ओर जाने वाली कच्ची पगडंडी, लगातार ढलान पर उतरती जाती है वहीं पर आदमियों की यह भीड़ मैंने देखी।

बीच रास्ते में ही, कानों-कान सुनकर, उत्कंठा पैदा हो जाने के कारण, मैंने एक भले आदमी से स्नेहपूर्वक पूछा—भैया! क्या हुआ है? क्यों इतने तड़के यहाँ ढेर सारे लोग इकट्ठा हैं? कुछ गड़बड़ हो गया है क्या?

—बंधु! आपकी ही तरह मैं भी अनजान हूँ। फिर भी सुना जा रहा है किसी नई मेनका ने नवजात शकुंतला को सड़ांध भरे पानी ले जाने वाले नाले के किनारे छोड़ दिया है। भले आदमी ने कहा।

—मुझे लग रहा है कि आप संस्कृत पढ़ाते हैं। मैंने कहा।

—ठीक सोचा आपने। परंतु मैं संस्कृत पढ़ाता नहीं बल्कि ग्रेजुएशन तक मैंने संस्कृत पढ़ी भर है। भद्र पुरुष ने उत्तर दिया।

—हः हः हः! पढ़ने और पढ़ाने में भला क्या भेद? अट्टहास करते हुए मैंने कहा—भाई जी! एक ही सिक्के के दो पहलू हैं (दोनों) आप देखें कि मेनका की कहानी को अध्यापक भी जानता है अध्यापित (छात्र) भी जानता है।

—मेरे ख्याल से आप संस्कृत प्रोफ़ेसर हैं। विश्वविद्यालय में पढ़ाते हैं या डिग्री कॉलेज में? मेरे साथी ने पूछा।

अच्छा अंदाजा लगाया आपने। विश्वविद्यालय में हूँ। सवेरे घूमने के लिए निकला हूँ। परंतु आपने (तो) अत्यंत करुण और निर्दयता-भरा वाक़्या सुना

दिया। यदि और किसी काम में अड़चन न हो रही हो तो साथ ही चलिए। देखें कि क्या घटना घटी है?

–अच्छा प्रस्ताव है यह। आप अग्रेसर हों। लघुशंका को संपन्न कर, मैं भी आपके पीछे आ रहा हूँ।

मंद-मंथर कछुए की चाल से मैं चल पड़ा। कुछ ही क्षणों में वह भले मानुष भी साथ हो लिए। हम दोनों ही लंबे डग भरते, रास्ता पार कर घटनास्थल तक आ पहुँचे। तिल रखने की भी जगह नहीं थी। नब्बे प्रतिशत तो महिलाएँ भरी थीं। वे सब भी अधिकांशतः निकट स्थित झुग्गी-झोंपड़ियों में रहने वाली मल्लाहों की औरतें! कुछ भिखमंगिने भी थीं। सबकी सब सवाल पर सवाल दागने में लगी थीं और भगवान् को कोसने में लगी थीं। समाधान (घटना की सच्चाई) किसी के पास नहीं था।

–बहन जी! सुना है कि कोई परित्यक्ता बच्ची वहाँ है? क्या हुआ? एक से पूछा मैंने।

–क्या बताऊँ साहब! खार खाई हुई सी वह बोली–आनंद भोगने में तो सब कुछ भूल-भाल जाता है। परंतु जब करनी का फल प्रकट होता है तब सब कुछ याद आने लगता है। कैसा जमाना आ गया है? नवजात बच्ची को भी उस राँड़ ने भगवान के भरोसे, मोरी के मुहाने पर छोड़ दिया। इतना तक नहीं सोचा कि उसे कुत्ते खा जाएँगे या सियार? हमारे जमाने में तो ऐसा पापाचार नहीं था।

मैंने सोचा कि महिला के मुँह से तो सच जाना ही नहीं जा सकता। क्योंकि यह जाति ही प्रमाण-उदाहरण झोंकने में विवश होती है। बिना द्राविड़ प्राणायाम के कुछ भी (सीधे) बता पाने में समर्थ नहीं होती। आप तिलभर पूछोगे वह ताड़ के बराबर बताएगी। महिला के साथ बतियाने में महिला ही समर्थ होती है, पुरुष नहीं।

सामने से आते हुए एक युवक को, विनम्रतापूर्वक रोककर मैंने पूछा–क्यों भैया! उस बच्ची के विषय में...।

बीच में ही, मुझे लाँघते हुए उस युवक ने कहा–जान लिया, जान लिया। वह बच्ची अभी भी मरासू हालत में वहीं पड़ी है। ऐसा लगता है कि पुलिस थाने को इत्तिला देने के लिए कोई आदमी गया है। परंतु बच्ची के रूप-लावण्य को देखकर ऐसा अनुमान होता है कि किसी बड़े घराने की संतान है (वह)।

–ऐसा? मैंने विस्मय के साथ पूछा।

–हाँ और क्या? श्रीमान्! जो हो सो हो। फिर भी, कृपा करके आप भी

उसे एक बार देख लें। न जाने किसी हिंदू औरत की कोख से जनमी है या मुस्लिम खानदान की है। फिर भी है एकदम गुलाव के फूल जैसी...। नौजवान ने कहा।

अब बढ़ गई मेरी उत्कंठा। मेरे पाँवों में मानो पंख लग गए। सहयायी को, जो इस घटना के बहाने ही मित्र वन गया था, प्रेरित करता आदमियों की भीड़ के पास पहुँचा। बड़ी कठिनाई से, मैं पहले...मैं पहले (पहुँचू) के रोग से ग्रस्त, कुछ भी न करने लायक़, मनोरंजन-मात्र रुचि वाले, खेल-खिलवाड़ देखने के रसिक लोगों को दो भागों में बाँटता मैं पहुँच गया घटना के केंद्र स्थल पर। तव तक समीपवर्ती दारागंज थाने के थानेदार, कुछ सिपाहियों के साथ आकर, वच्ची के विषय में प्रमाण इकट्ठा करने में प्रयत्नशील हो उठे थे।

मुझे देखते ही कुर्सी से उठकर 'आइए प्रोफ़ेसर साहव!' इस प्रकार आदर-सहित अगवानी करके, मेरे साथी-सहित मुझे भी पास में रखी कुर्सियों पर वैठाकर थानेदार ने कहा–आप लोग देखें! मेला देखने के लिए तो सैकड़ों लोग, अपने-अपने काम छोड़कर, बेमतलब (यहाँ) आए हुए हैं। ऐसा लग रहा है मानो जीवन में पहली वार इन लोगों द्वारा (कोई) नवजात कन्या देखी जा रही है। परंतु मेरे सवाल का जवाब कोई नहीं दे रहा है। मैं पूछ रहा हूँ कि सबसे पहले किस मर्द या औरत ने इस बच्ची को देखा? अथवा वह किसके-किसके द्वारा छोड़ी गई हो सकती है? यदि इस विषय में कोई भी सूचना देना चाहता हो तो फिर उसका नाम भी गोपित रखा जाएगा। परंतु बच्ची का तो कल्याण हो जाएगा।

प्रोफेसर! आप ही बताएँ। इस मामले में हम कर ही क्या सकते हैं? हम तो बस काग़ज़ी कार्रवाई पूरी कर इस बच्ची को अनाथालय पहुँचा देंगे। परंतु यदि यह कन्या किसी मुसलमान की संतान हो और (किसी) अनाथाश्रम में पालित-पोषित युवती बनकर किसी हिंदूयुवक के साथ सहधर्मचरण के लिए विवाह की जाय तो इस रहस्य को जान लेने वाली उसकी माँ के मन में क्या भाव पैदा होगा? और यदि यह हिंदू महिला की संतान हो तथा किसी मुस्लिम पुरुष को ब्याह दी जाय तो फिर उस (हिंदू) रमणी की क्या दशा होगी? इतना तो सुनिश्चित है कि इस दुर्भाग्यग्रस्त कन्या की जन्मदात्री है इस नगर में ही। नगर में क्यों? मैं समझता हूँ कि इस दारागंज (मुहल्ले) में ही है। अन्यथा लूकरगंज में पैदा हुई बच्ची, दो कोस दूर दारागंज आकर, नहीं छोड़ी जा सकती है। संतान त्यागने वाली हृदयहीन माँ केवल निर्जन स्थान ढूँढ़ती है। अब सवाल यह उठता है कि जन्म देने वाली वह माँ मुस्लिम है अथवा हिंदू गृहिणी या फिर सिखमत को मानने वाली? जनता-जनार्दन

को समझने के उद्देश्य से यह सब मैं कह रहा हूँ।

पुलिस थाने के अधिकारी का मंतव्य सुनकर मैंने अनुभव किया कि श्रीमान जी सर्वथा सच कह रहे हैं। यह बहुत महत्त्वपूर्ण सामाजिक समस्या है। वह केवल सामान्य घटना ही नहीं है प्रत्युत इस लोकतंत्र के जमाने में मनुष्यता के चेहरे पर लगा एक कलंक-चिह्न भी है। मैंने दारोगा के विचारों का समर्थन करते हुए, सिर हिलाते हुए कहा—हाँ-हाँ! आप एकदम तर्कसंगत बात कह रहे हैं। परंतु इस मामले में किया क्या जाय?

थानेदार बोला—आप तो शिक्षा के क्षेत्र में लगे हुए विद्वान हैं। राष्ट्र की समस्याओं के साथ, हम लोग तो केवल शरीर से संबद्ध हैं। काग़ज़ के घोड़े पर सवार होकर उड़ते रहते हैं। इस काग़ज़ी कार्रवाई से भला क्या होगा? हम तो बस रिक्त स्थान की पूर्ति में ही समर्थ हैं। परंतु आप सरीखे विद्वान तो न केवल शरीर से, वेतन से, जीविका से अपितु संरक्षण की महिमा तथा विचारों से भी राष्ट्र के निर्माता हैं। आप ही देखें अपने समाज की हालत! समाज तो होता ही है केवल सुशिक्षितों का, समुन्नतों का तथा सभ्यजनों का! अब आप ही अंदाज़ा लगाएँ कि स्वभाव से ही मूढ़ गँवारों का समाज कैसा होगा?

इसी बीच सिपाही तीन कप चाय ले आया। मित्र-सहित मैंने तथा थानाध्यक्ष ने पिया। चाय का एक घूँट निगलकर उसने फिर कहा—आश्चर्य तो यह है कि इस रहस्य को जानते हुए भी कोई उगल नहीं रहा है। इसी भीड़ में वह भी है जिसने इस कुकर्म में सहायता की होगी। वह भी होगा ज़िसने मोरी के मुहाने पर बच्ची को छोड़ देने का उपाय बताया होगा। परंतु सभी भय खाते हैं कि पुलिस की सहायता करने पर गवाही देने के लिए बार-बार थाने तक जाना पड़ेगा। (अब) आप ही बताएँ? जिस देश में इस प्रकार का समाज है वहाँ का न्याय कैसा होगा?

थानेदार ने कुपित होकर सिपाहियों को निर्देश दिया—सुनो जी! खदेड़ो इस भीड़ को यहाँ से। यदि कहने भर से न जाएँ ये लंठ तो डंडा मार कर भगाओ। यह सुनते ही सबों ने भागना शुरू कर दिया। पाँच-छह मिनट में ही घटनास्थल प्रायः निर्मक्षिक (साफ-सुथरा) हो गया।

भीड़ छँट जाने के बाद थानेदार पुनः बोला—देखा आपने! शहरी लोग कितने हिम्मत वाले होते हैं? लाठीचार्ज का नाम सुनते ही सिर पर पैर रखकर भाग खड़े हुए।

उसके बाद, बचे हुए सभ्य जनों को आदरपूर्वक बुलाकर थानाध्यक्ष ने

कहा—चलिए, तमाशबीन तो चलते बने। अब मैं सादर, हाथ जोड़कर निवेदन करता हूँ इस नवजात कन्या का उद्धार करें आप लोग। देखिए तो सही। अपने गोरेपन से साक्षात् भगवती गौरी (पार्वती) प्रतीत हो रही है। ज़रा-ज़रा सा खुले हुए (नील) कमल पुष्प सरीखी हैं इसकी आँखें। मैं तो मानता हूँ मानो स्वयं भगवती भागीरथी (गंगा) ही कन्याभाव को प्राप्त होकर प्रयागवासियों की सहृदयता की परीक्षा ले रही हैं।

भाइयो! पूर्वजन्म के संस्कारवश हमारे समाज में कुछ भाई लोग संतति-विहीन होते हैं। यह नवजात बच्ची, क्या उनमें से किसी एक के घर को रौशन करने में समर्थ नहीं? प्रौढ़ अवस्था में विद्यमान मेरी (अपनी) यदि पाँच बेटियाँ न होतीं तो निश्चित रूप से मैं ही, देवता के प्रसाद जैसी इस बच्ची को स्वीकार कर लेता। यदि कोई भाग्यवान् महापुरुष इसे अपना ले तो इसका जीवन-मार्ग ही बदल जाए। छोटी गड़ही की ओर जाती नदी देवनदी गंगा में ही समा जाय।

तो फिर बोलिये! है कोई इस प्रकार का उदारता का कल्पवृक्ष? है कोई धर्म की धुरी पर बैठा बड़े कलेजे वाला? अरे, महात्मा गांधी ने तो लक्ष्मीबेन नाम की हरिजन-कन्या को अपनी पुत्री घोषित किया था। स्वामी विवेकानंद द्वारा (भी) कोई अंग्रेज लड़की भगिनी निवेदिता के रूप में स्वीकार की गई थी। क्या आप लोग अपनी ही संतति को, उसी प्रकार स्वीकार नहीं कर सकते?

थानाध्यक्ष के इतना कहने पर प्रायः चारों ओर चुप्पी व्याप्त हो उठी। कोई भी सामने नहीं आया। परंतु मेरे हृदय-सागर में उत्ताल भावनाओं की तरंगें आँधी के वेग से उठ खड़ी हुईं। मेरे मन में ऐसा विचार आया मानो (थानेदार के वक्तव्य का) लक्ष्यभूत मैं ही हूँ (प्रोफ़ेसर होने के कारण) सहृदयता का पर्याय! मैं ही हूँ पढ़े-लिखे लोगों का अलंकार ओर समाज का मुखिया (कर्णधार) 'यह मेरे ही द्वारा ग्रहण करने योग्य है' का भाव सर्वप्रथम मेरा ही वरण करता है। यहाँ उपस्थित जन-समूह में भी मैं ही, प्रत्येक दृष्टि से, नवजात बच्ची के कल्याण-चिंतन में श्रेष्ठता एवं प्रथमता का भाजन हूँ।

तो फिर क्यों न मैं ही इस अनामिका (बेनाम) बच्ची को ग्रहण कर लूँ? यदि मैं भी लड़ाई के मैदान से भाग खड़ा होता हूँ तो फिर यह थानेदार क्या सोचेगा? (यही कि) विश्वविद्यालय में तो वेद पुराण-धर्मशास्त्र तथा दया आदि की बातों का उपदेश देता हूँ और कर्मक्षेत्र में एक गँवार की नपुंसकता का आचरण करता हूँ। मेरी ही आत्मा ने मुझे फटकारना प्रारंभ दिया।

कुर्सी से उठकर, यंत्रचालित के समान मैंने उस बेनाम बच्ची को अपनी

गोद में उठा लिया। थानाध्यक्ष प्रश्नभरी, आँखों से मुझे देख रहा था। मैंने उत्तर दिया—अब सब कुछ संपन्न हो गया। जहाँ कहीं भी मेरे हस्ताक्षर की आवश्यकता हो, देने को तत्पर हूँ। आश्चर्य और आनंद से विस्फारित नेत्र से कृतज्ञता के आँसुओं की वर्षा करता हुआ थानेदार, सिपाही से बस इतना बोला—जाओ मेरे पैसे से सवा किलो लड्डू तुरंत ले आओ। मैं यहीं भगवती गंगा का प्रसाद बाँटूँगा। मेरे होंठों पर भी ज़बर्दस्ती फैल गई मंद मुस्कान!!

एकहायनी*

एक साल की थी वह। मक्खन की डली सी चिकनी-चिकनी, फेनराशि के समान एकदम धवल तथा कुकुरमुत्ते की कंदली के समान कोमल-कोमल। फिर भी उसकी माँ विमला उससे कतई लगाव नहीं रखती थी। यद्यपि वह (उस) महिला की पहिलौंठी संतान थी, फिर भी उसके पैदा होने से उसमें तिलभर भी वत्सलता पैदा नहीं हुई। जब तक वह विमला के गर्भ में रहती रही, माँ के लिए गर्भ-भार के ही समान थी। फ़ेमिली-डॉक्टर ने कितनी ही वार हिदायत दी—मैंडम! सवेरे घूमना-टहलना आवश्यक है। ऐसा करने से संतान पैदा करने में सुविधा होती है। अपने भोजन में भी गरिष्ठ पदार्थ (आपको) नहीं लेना चाहिए। मनोवृत्ति का प्रभाव भी जातक को प्रभावित करता है।

परंतु कौन सुनता है? डॉक्टर की बातें पानी की तरह, विमला के संतप्त हृदय पर गिर कर, धुआँ बन (उड़) जाती थीं। विमला वह सब सुन कर भी अनुकूल आचरण नहीं करती थी। एकदम उलटा ही व्यवहार करती थी। उसने कभी भी प्रातः संचरण नहीं किया, न ही हल्का-फुल्का व्यायाम! जानते हुए भी वह प्रायः अपाच्य अथवा गरिष्ठ ही भोजन-सामग्री ग्रहण करती थी। गर्भ में विद्यमान संतान बेटी हो अथवा बेटा। मरे अथवा जिए? इससे मुझे क्या लेना-देना? ऐसी ही सोच थी विमला की।

विमला यह अनर्थ-चिंतन किस कारण से कर रही थी? वत्सलता का अंकुर उसके हृदय में अंकुरित क्यों नहीं हो रहा था? यह सब जानने के लिए उसके अतीत का उद्घाटन करना आवश्यक है। पर्दा खोले बिना नेपथ्य-गृह की जानकारी कैसे होगी? रेत को बिना हटाए जल का दर्शन भला कहाँ संभव है?

इलाहाबाद नगर के कर्नलगंज मुहल्ले में नामी-गरामी धवन-परिवार में जन्म प्राप्त करने वाले श्री देवेश धवन हाईकोर्ट में लब्धप्रतिष्ठ अधिवक्ता थे। देवेश के परिवार में पत्नी माधुरी तथा तीन बेटियाँ—कमला, विमला तथा सरला थीं।

* एक वर्ष की

करोड़ों मनोरथों द्वारा चाहे जाने पर भी (उनका) कोई बेटा नहीं था, इस कारण पति की अपेक्षा पत्नी निरंतर शोकरूपी फोड़े की पीड़ा का अनुभव करती थी। जहाँ तक देवेश की बात है वह वकालत के पेशे से जीवन गुज़ारते हुए, घर, रास्ते, चौराहे तथा कोर्ट में मुक़दमा लड़ने वाले मुवक्किलों से घिरे, नाना प्रकार की केस संबंधी बातें करते, बेटे के लिए न कभी सोचते थे और न ही उसके लिए संतप्त होते थे।

ज़िंदगी की गाड़ी धीरे-धीरे आयु की पगडंडी को पार कर रही थी। बच्चियाँ बचपना गुज़ार कर यौवन की देहरी पर आ पहुँची। उनके शादी-विवाह का सदंर्भ पैदा हो जाने पर देवेश ने प्रयत्न प्रारंभ किया। अल्प प्रयास से ही कमला का विवाह-संस्कार संपन्न हो गया। दामाद एम.ए. परीक्षा पास तथा प्रशासन-सेवा में लगा हुआ था। इस विवाह से धवन-दंपती को, सांसारिक दृष्टि से महान् सुख एवं संतोष प्राप्त हुआ।

कमला की शादी से पूर्व ही, किसी दिन कोई सुदर्शन नवयुवक धवन महोदय से मिलने आया। उन दिनों देवेश धवन शहर से बाहर गए हुए थे। इलेक्ट्रिक कालवेल की ध्वनि सुनकर, अपनी पाठ्यपुस्तक पलंग के सिरहाने ही रखकर, किवाड़ खोल कर विमला (बाहर) आई और पूछा–

–कहिए? किससे मिलना चाहते हैं आप?

–क्या धवन साहब का घर यही है? आगंतुक ने पूछा।

–आपने ठीक जाना। परंतु इस समय वह यहाँ नहीं है। मुक़दमे के मामले में मिर्ज़ापुर शहर गए हैं। यदि कोई मैसेज हो तो आप बताएँ। पिताजी के लौट आने पर मैं बता दूँगी।

...युवक इसके उत्तर में कुछ नहीं बोला। केवल फटी-फटी आँखों से उस अनंग-मंजरी-सरीखी हिम्मती बाला को देखता रहा।

–हलो, क्या सोच रहे हैं आप? यदि आपका काम अत्यावश्यक हो तो पेपर पर लिख दें आप। ले आऊँ काग़ज़ और कलम?

–माफ़ कीजिएगा। मुस्कान भरे मुँह वाला नवयुवक बोला। मैं तो बस आपको देख-देख कर ही हतप्रभ हो उठा हूँ। ओह! एक ही साँस में कितना अधिक बोल लेती हैं आप? ऐसा प्रतीत होता है मानो सूर्य देवता के उदयाचल शिखर को चूमते ही शेफालिका की मंजरी फूल बरसा रही हों। किस क्लास में पढ़ती हैं आप?

अब विमला को अपनी ढिठाई तथा मुँहफट होने का अनुभव हुआ। सचमुच

कितना असभ्य आचरण किया उसने? न नाम पूछा, न ही परिचय जाना। एक ही साँस से कितने ही सवाल उस बेवकूफ ने पूछ डाले। ओह उसके विषय में कैसी धारणा बनेगी युवक के हृदय में? परंतु अब इस दुश्चिंता से क्या फायदा? जो बीत गया सो बीत गया। अब तो जैसा अपने हृदय को भाए वैसा ही सोच ले पाहुन। उससे क्या बनेगा-बिगड़ेगा? न ही वह कोई नाते-रिश्तेदार है, न ही होने वाला दूल्हा। होगा कोई अन्याय से पीड़ित अथवा (किसी अन्य को) पीड़ा देने वाला मुवक्किल।

–मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दे रही हैं? क्या कुर्सी के ऊपर बैठने को भी नहीं कहोगी? युवक ने कहा।

लाज के मारे ललछौंह हो उठे विमला के दोनों गाल। फूटती हुई हँसी को बड़ी कठिनाई से होंठों के पिटक में नियंत्रित करती, लज्जापूर्वक थोड़ा आगे आकर उसने कहा–बैठें आप। मैं धवन महोदय की मँझली बेटी हूँ। मेरा नाम है विमला। इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में बी.ए. द्वितीय वर्ष में पढ़ती हूँ। मुझे लगता है कि मैंने अशिष्टता बरती। माफ़ी चाहती हूँ।

हँसने लगा युवक। रमणी भयभीत हो जाय अथवा लाज से दुहरी हो जाय तो उसे देखकर कौन (युवा) विजय-सुख का अनुभव नहीं करता? प्रथम दर्शन में ही हिरन के समान उसका हृदय विमला के दृष्टिरूपी जाल की रसरी में बँध गया था। दूध के समान गोरी काया, दूध की पनाली जैसी (ही) चितवन! एकदम रतनारे अधर! साँचे में ढले हुए से सारे के सारे अंग! विधाता ने मानो पूरी फुर्सत में सब कुछ गढ़ा था।

युवक के बैठते ही विमला घर के भीतर गई। तत्काल ही तश्तरी में कुछ घर की बनी मिठाई ले आई तथा उसे काठ की मेज पर रखती हुई बोली–यह माँ ने घर में ही बनाया है। खाएँ आप। मैं तब तक जल ले आती हूँ।

जब तक विमला पानी लेकर लौटी तब तक युवक ने सारी मिठाइयाँ खा डालीं। हँसता हुआ (वह) बोला–तुम भी क्या जानोगी कि कैसा पेटू आया था कि जिसने एक टुकड़ा तक नहीं छोड़ा?

दोनों उन्मुक्त भाव से हँसने लगे। अपरिचय की बाधा भी कम हो गई।

विमला पूछे कुछ, उसके पहले ही युवक बोला, परंतु बोलने के साथ-ही-साथ उसकी मुखमुद्रा अचानक ही गंभीर और दीन हो उठी।

–विमला! अपनी धृष्टता से तुम्हारे बारे में सब कुछ जानने के बाद यदि अपना परिचय न दूँ तो कृतापराध होऊँगा। परंतु परिचय देने में भी मेरी जिह्वा

अग्रसर नहीं हो रही है। मेरा परिचय और यहाँ आने का मेरा प्रयोजन सुनकर तुम भी न जाने क्या सोचोगी?

–ख़ैर, मधुप हूँ मैं। 'मधुप पांडेय' ऐसा कहना ही ठीक रहेगा। नैनी स्थित जी.आई.सी. फैक्ट्री में इंजीनियर हूँ। निरंतर ही विरोधरत रहने पर भी, दूर भागते रहने पर भी, दहेज के लोभी मेरे कुटुंबियों ने मेरी शादी कर दी। पूर्व जन्मों के दुर्भाग्यवश मन को रमाने वाली, मनोभावों का समर्थन करने वाली तथा भयावह संसार-सागर को पार कराने वाली धर्मपत्नी के स्थान पर कोई नित्यरुग्णा, असंयतमुखी, कर्कशा डकैत की लड़की ज़बर्दस्ती आ धमकी मेरे जीवन में।

न वह मेरी माँ का आदर करती है, न ही भाभी का। रोज-रोज कर्णाट-कलह (अकारण लड़ाई) पैदाकर घर का वातावरण दूषित कर मेरे चरित्र पर भी लांछन लगाती रही नाना प्रकार की मिथ्या युक्तियों से। ज़िंदगी के वीते हुए पाँच साल, नारकीय यातनाओं के साथ ही वीते। कुछ दिनों पूर्व ही मैंने सुना कि (मुझसे) अलग रहने के लिए इच्छुक उसने अपने बाप के कहने पर मुझसे प्रतिमास गुज़ारा-भत्ता पाने के लिए कोर्ट में कोई केस दायर किया है। वह सब सुनकर ही किंकर्तव्यविमूढ़ हुआ मैं तुम्हारे पिताजी की शरण आया हुआ हूँ।

अपनी व्यथा-वेदनाओं की अटूट शृंखलाओं से आहत तथा अपनी आपबीती वयाँ करने वाले युवक ने यह नहीं देखा कि उसकी दुर्भाग्य कथा को सुनकर टूटी हुई विमला कव, नेत्रों की पुतलियों की सीमारेखा को लाँघकर वेगपूर्वक गिरती अश्रुधाराओं को पोंछकर पुनः सामान्य हो उठी थी। उसकी आपबीती समाप्त होने पर वह अश्रुबोझिल आँखों से वस इतना कह सकी कि पिताजी के आते ही आपके आने की वात उन्हें बताऊँगी। परंतु अपना कार्य तो स्वयं आकर संपन्न करना होगा। अतः आप फिर आएँ।

नमस्कार कहकर वह भीतर चली गई। युवक भी अपनी कर्कशा पत्नी के स्थान पर विमला को स्थानापन्न कर, विविध मनोरथों से अपने जीवन के सूने आकाश को आवाद करता घर लौटा।

उसी क्षणसे विमला उसके दुर्भाग्यरूपी विषधर की मणि बन गई। वह उसके जीवनरूपी मरुस्थल की मधुर जल वाली नदी बन गई। विघ्न-बाधाओं के गर्म लू के थपेड़ों, लोकनिंदा-रूपी धारासार वर्षा तथा स्वजनों की विमनस्कतारूपी टंड को निरंतर झेलता उन दोनों का प्रेमरूपी कल्पवृक्ष उत्तरोत्तर अतिशय विकसित होता रहा। प्रेम-रूपी पर्वत से निकली प्रीति-प्यार की नदी अवरोधों की परवाह नहीं करती। समाज के उपहास को उपेक्षित कर देती है। (लोगों के) ईर्ष्या-द्वेष

आदि को झुठला देती है। रोड़ा अटकाने वाली शास्त्र-मर्यादा को (भी) प्रमाण नहीं मानती। अपनी आत्मा की आवाज़ को ही सर्वस्व मानती है।

कुछ दिनों बाद ही देवेश धवन लौट आए। मधुपपांडेय के वृत्तांत को आद्यंत सुनकर, उसके दुर्भाग्य की कथा को वड़ी आत्मीयता के साथ अनुभव कर वह उसकी सहायता करने में जुट गए। मधुप के सद्गुणों, विद्या-विनय-संपत्ति तथा व्यक्तित्व को देखकर, अपनी कन्या के प्रति उसकी आसक्ति का भी चुपचाप पता लगा कर, मन-ही-मन उन्होंने उसे अपना जामाता चुन लिया। मधुप की घरेलू ज़िंदगी के बारे में भी उन्होंने अपने खुफ़िया तंत्र से सव पता लगा लिया। उन्होंने मधुप को सर्वथा निर्दोष तथा दुर्भाग्य के आँधी-बवंडर से आहत अनुभव किया। इसलिए मधुप के प्रति उनकी सहानुभूति अतिशय बढ़ती गई। पिता की स्नेहभरी दृष्टि तथा मौन अनुमति को जानकर विमला भी मधुप को मन-ही-मन अपना पति मान बैठी तथा स्नेहमय व्यवहारों, एकांत परिरंभों तथा अन्यान्य प्रणयव्यवहारों से उसे खुश रखने लगी।

परंतु आगे आने वाली कालरात्रि को कौन देख सका था, कोर्ट के चैंबर में केस की पैरवी करते ही करते धवन महोदय किसी दिन हृदय की गति रुक जाने से उसी क्षण दिवंगत हो उठे। हिंसक तूफ़ान ने विलास-वनिका को उजाड़ डाला। समूचा परिवार बेसहारा हो गया। अब कौन किसकी रक्षा करे? सबके सब अरक्षित तथा रक्षा करने योग्य बन गए। एक ओर तो बेचारा मधुप दो-दो मुक़दमों के दलदल में फँसा, मुक्ति के लिए प्राणपण से प्रयत्नशील था। दूसरी ओर विमला के विवाह के लिए, उसके सगे-संबंधी कमर कसे तैयार थे। विमला की सुंदरता ही उसकी बैरन बन गई थी। माँ किस बहाने का आश्रय लेती? विमला किसी विवाहित युवक की प्रतीक्षा में बैठी है, यह कहना भी उचित नहीं था। होनहार प्रबल होता है। लोकनिंदा के भयवश, कुटुंबियों, के आश्रय-समर्थन से वंचित विमला किसी भोग-लोलुप क्लर्क के पल्ले पड़ गई।

बीच की कहानी अनपेक्षित ही प्रतीत होती है। नारी की विवशता कुछ ही वर्ष बाद कन्या के रूप में प्रकट हुई। वही कन्या छोटी चारपाई के ऊपर पड़ी इस समय चीख-चिल्ला रही है। एक साल की है वह। गौरवर्णा तथा चिकने कोमल अंगों वाली वह माँ पर गई है। परंतु इससे क्या? विमला का उससे लगाव (ही) नहीं था।

विवाह हो जाने पर भी वह मधुप को भूल नहीं पाई। मधुप क्या सोचता होगा? आख़िर क्यों मैं उसके जीवन की मरुभूमि में प्रविष्ट हुई? मैंने अपना

सर्वस्व भी उसे समर्पित कर दिया। कैसे-कैसे सपने थे हम दोनों के? परंतु अपने सुख को साधने के लिए, मधुप को कलंक-पंक में ठेलकर मैं बाहर निकल आई! धिक्कार है मुझ जैसी स्वार्थ में डूबी अभद्र आचरण करने वाली को!

जब दो प्राणी प्रीति के बंधन में बँध जाते हैं तो उनका जीवन स्वतंत्र नहीं होता है। एक का दूसरे के ऊपर पूरा अधिकार होता है। प्रेम में प्रवंचित हुआ पुरुष हो या स्त्री, जी नहीं सकता। ऐसा व्यकित जीते जी ही मर जाता है। ऐसी नारी भी जीती हुई भी मर जाती है। मेरी भी ज़िंदगी मधुप की अमानत थी। मैं मधुप की ही संपत्ति के समान थी। किसी पराए, अनचाहे, अपरिचित, अनाकांक्षित पुरुष को (पति रूप में) स्वीकार कर, उसकी कामवासना के शमन का उपायमात्र बनकर निश्चित रूप से मैं (शरीर वेचने वाली) वेश्या ही बन गई हूँ।

एक है जो आज भी मेरी राह देख रहा है। अपनी ज़िंदगी का दूसरा रूप मानता है (मुझे) और दूसरा है सर्वगुण-विहीन। मुर्गे की तरह मुझे ज़बर्दस्ती भोग कर स्वयं को परितुष्ट कर रहा है। हाय रे मेरे दुर्भाग्य! क्यों नहीं मैंने आत्महत्या कर ली? क्यों नहीं मैंने इस (पापमय) विवाह-संबंध को ठुकरा दिया? व्यर्थ हो गया मेरा पढ़ना-लिखना। वेशवाट के ही लायक है मेरी सुंदरता। देवालय सरीखे अपने शरीर को मैंने शराब का अड्डा बना दिया। अब इसी रौरव नरक में सारी ज़िंदगी गुजारनी होगी।

विमला के ऐसा सेचने ही सोचते बच्ची फिर रोने लगी। रोए कुबीज से पैदा हुई वह! पाप का अंकुर है यह! उसी वासना-लंपट की निशानी है यह जो मेरे सौभाग्यचंद्र के लिए राहु बन गया। नहीं जाऊँगी मैं। कुछ नहीं सुनूँगी। चाहे मरे, चाहे जिए!

–बहू! बच्ची चीख रही है। कहाँ हो तुम? क्यों नहीं उठा लेती? घर के भीतर से सास की देशना सुनाई पड़ी

बच्ची की चीख-चिल्लाहट उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई। उठना ही पड़ेगा। बेमन से उठी विमला और कन्या के पास पहुँची। उसे देखते ही, उस बछिया के समान, जिसकी प्रसूता माँ पास में ही खड़ी हो, एक साल की वह बच्ची, नाना प्रकार की उल्लासभरी चेष्टाओं का प्रदर्शन करती, दोनों हाथों को आसमान में फैलाती तथा अधरों पर मुस्कान बिखेरती चीखना भूल गई। उस अज्ञान से अभिभूत, कपास की डली के समान चिकनी बच्ची के इस ईश्वरीय स्वरूप को देखकर विमला को मानो काठ सा मार गया। अचानक ही वह भूल गई द्वेषभाव! अनुल्लंघनीय संततिप्रेम (वात्सल्य) ज़बर्दस्ती समुदित हो उठा।

वह सोचने लगी–हाय रे! यह बेचारी तो एकदम निरपराध है। इसने भला क्या पाप किया है, तो फिर क्यों यह मेरे द्वारा उपेक्षित अथवा दंडित की जा रही है? भोगने वाला जो कोई भी हो, संतान तो पैदा ही होगी। प्रकृति का यही नियम है। यदि मैं मधुप की ही भार्या हुई होती तो भी यह कन्या (हम दोनों से) पैदा हो सकती थी। क्या इतने भर से ही यह ठुकराने योग्य हो गई है कि यह मधुप के वीर्य से नहीं पैदा हुई है? बहुत गलत किया मैंने। अब समाप्त हो चुका है मेरा कौमार्य, विलुप्त हो चला है प्रेम! अब तो मेरा मातृभाव ही प्रधान है। (परन्तु) मेरा यह व्यवहार माँ के हृदय के अनुरूप नहीं है।

माँ को देखकर बच्ची ने पुनः आसमान में बाँहों को लहराकर समुद्र की फेन-राशि के समान उछाल भरती मुस्कान बिखेरी। एक झटके के साथ, शरीर को झुकाकर विमला ने उस एक साल की बच्ची को, स्नेह भरे चुंबनों से दुलारती, गोद में उठा लिया।

शतपर्विका*

खाँसी और ज्वर से पीड़ित रामलाल दिन और रात्रि में कभी भी थोड़ा-सा सुख-चैन नहीं प्राप्त करता था। रोग से जर्जर उसने वयःसंधि का भी अनुभव नहीं किया। चंद्रतल के समान कोमल उसका कपोलमंडल शिलींध्र (कुकुरमुत्ते) के अंकुर के समान, रोमसमूह से कब चितकबरा हो गया और कब पुष्पित काश के छोटे वन के समान उसकी छवि सफ़ेद और काली हो गई–यह सब रामलाल को दिखाई नहीं दिया। मात्र चालीस वर्ष के जीवनकाल में उसे तीन घटनाएँ याद थीं–भाग्यवती के साथ उसका विवाह, रक्षालेखा कार्यालय में लिपिक के पद पर उसकी नियुक्ति और रमा से लेकर कमला तक सात कन्याओं का लगातार जन्म!

अपनी कन्याओं की सेना देखते ही रामलाल को दुस्सह वेदना होती थी। वह लगातार सोचता था–ये सब मेरे ही भालपट्ट (माथे) पर कैसे लिखी थीं? मुझे एक पुत्र की कामना थी। ये सात उत्पन्न हो गईं। किसने माँगा था? मृत्यु के चीत्कार की तरह ये रात-दिन मेरे चारों ओर कैसे खेलती रहती हैं? मरती क्यों नहीं हैं? क्यों ये सभी स्वस्थ एवं जीवित हैं? क्या इनके लिए भगवान यमराज ने कोई रोग या व्याधि नहीं दी है?

किंतु रामलाल का यह प्रलाप निरर्थक था। इस प्रकार की चिंता के साथ ही कोई दूसरी (कन्या) आ जाती थी। लगातार प्रजनन (बच्चे पैदा) करने से सुंदरी पत्नी भी असमय में ही वृद्धा हो गई। बहुत प्रार्थना करने पर भी, निरंतर स्वप्न देखने पर भी, कुलदीपक पुत्र सौभाग्यवती की कोख से उत्पन्न नहीं हुआ। निराशा की नदी में प्रायः डूबते हुए रामलाल ने सौभाग्यवती के साथ मंत्रणा करके पैंतीस वर्ष की आयु में उसकी (सौभाग्यवती) बहिन के एक पुत्र को गोद ले लिया। नाम से श्यामलाल, स्वभाव से छिछोरा और व्यसनासक्त, उम्र से सत्रह वर्ष का वह कुलदीपक भी रामलाल के हृदय के अँधेरे को दूर करने में समर्थ नहीं हुआ। बेचारा रामलाल क्या करे? यहाँ कुआँ और वहाँ

* दूर्वा, घास, दूब

खाई! जो कन्याएँ उसके वीर्य से उत्पन्न हुईं वे उसे तृणमात्र भी (तनिक भी) अच्छी नहीं लगती थीं और जो पुत्र के रूप में अच्छा लगता था, वह उसके वीर्य से उत्पन्न नहीं हुआ था–इस प्रकार, दोनों ही तरह से रामलाल का हृदय दुःख और वेदना से व्याकुल रहता था।

उसकी सात कन्याएँ थीं। रमा, श्यामा, श्यामला, विमला, अमला, अचला और कमला। वे सभी अपने प्रति पिता के द्वेष को जानती थीं। कभी उसके सामने नहीं आती थीं। दिन भर हँसती, गाती, कूदती और उछलती रहती थीं। अनेक व्यंजन बनाती थीं, किंतु कार्यालय से लौटते हुए पिता की साइकिल की घंटी को सुनते ही वे सभी घर में छिप जाती थीं। पिता के द्वारा बुलाए जाने पर भी, कोई भी कन्या अचिंत्य वज्रपात के भय से, बाहर नहीं आती थी। सौभाग्यवती ही बिल्ली के गले में घंटी बाँधने के लिए आगे आती थी।

यह गाथा पुरानी है। रमा के जन्म के समय रामलाल पंद्रह साल का ही था। पितृत्व के अभिप्राय को भी वह अच्छी तरह नहीं जानता था। पत्नी के साथ क्रीड़ा करते हुए ही पुत्री उपहार के रूप में प्राप्त हो गई थी। संतान शीघ्र उत्पन्न करने के कारण सभी उसका उपहास करते थे। अब सात हो गई थीं। अब कोई हँसी नहीं उड़ाता था, परंतु रामलाल की अंतरात्मा स्वयं ही अब उसका उपहास करती थी।

–पानी, पानी दो। अरे, यहाँ कौन है? प्यास से व्याकुल रामलाल ने पत्नी का नाम लेकर कहा। सौभाग्यवती उपस्थित नहीं हुई। वहाँ रमा थी। पिता के शब्दों को अच्छी तरह सुन रही थी, परंतु उसके पास जाने का उत्साह (साहस) उसमें नहीं था। परिणाम जानती थी।

–प्यास से मेरा गला सूख रहा है। हे राम! पानी दो। रामलाल ने दीन स्वर में फिर से माँगा।

निर्मल काँच के गिलास में ठंडा पानी लेकर रमा जैसे-तैसे पिता के पास जाती है। काँपती हुई सिरहाने खड़ी हो जाती है। कैसे निवेदन करे? आवाज़ नहीं निकल रही है। परंतु प्यासे पिता को पानी तो देना ही है। साहस को समेट कर वाणी के लिए प्रयास करती है–पिताजी! मैं पानी लाई हूँ। पी लीजिए! रमा धीरे-से कह रही है।

–मौन! कोई शब्द नहीं!

–पिताजी! आपने पानी माँगा था। मैं वह लाई हूँ। ले लीजिए! काँपती हुई रमा ने फिर से कहा।

–कोई उत्तर नहीं...।

–पिताजी!...

–क्यों पागल कुतिया की तरह पिता-पिता भौंक रही है? भाग जा! मैंने तुझे नहीं बुलाया था। तेरी माँ कहाँ है?

हाथ से गिरते हुए पानी के गिलास को धैर्यपूर्वक तिपाई के ऊपर रखकर करुणा से रोती हुई रमा घर के अंदर चली गई। सभी बहिनें एकत्र (इकट्ठी) हो गईं। बड़ी दीदी रो रही है, क्यों रो रही है? किसने क्या कह दिया? पिताजी ने कुछ अप्रिय बात कही है–ऐसे बहुत-से प्रश्न क्षणभर में ही उठ खड़े हुए।

बिस्तर पर रोती हुई रमा ने मन में सोचा–पत्थर में भी आग होती है। हमारे पिताजी के मन में भी अवश्य ही वात्सल्य होना चाहिए। उसे मैं प्रकट करूँगी। यदि इस प्रयास में प्राण भी नष्ट हो जाएँ, तो कोई चिंता नहीं। अब पार्वती की भाँति मेरे भी मन में हठ आ गया है। या तो मैं ही रहूँगी या फिर पिताजी का कन्याओं के प्रति द्वेष ही रहेगा। प्रतिदिन के अपमान से तो मरना ही अच्छा है।

रमा चुपचाप (दबे पैर) पिता के बिस्तर के समीप गई। उसने देखा कि पानी का गिलास इस समय खाली पड़ा है। यानी पानी पीलिया उन्होंने हर्ष से खिली हुई आँखों से उसने स्वयं ही तर्क किया–तो क्या पिताजी ने मेरा लाया हुआ पानी पी लिया? सचमुच पी लिया? अब संतुष्ट होकर सुख से सो रहे हैं। ठीक है। उनके पैर दबाती हूँ। शायद इससे भी उन्हें सुख (आराम) मिले।

मक्खन के समान कोमल हथेली से रमा पिता के चरणों को दबा रही है। पहले बायाँ पैर, फिर दाहिना पैर। अत्यंत शांत और गाढ़ी नींद में मग्न पिता को कुछ भी ज्ञात नहीं हुआ। क्या सच में उन्हें (पिता को) कुछ भी पता नहीं चल रहा है? अथवा चल रहा है? अथवा जानबूझकर सोने का नाटक कर रहे हैं? कौन कहता है? (कौन जाने) रमा के हृदय में निरंतर ही पक्ष-विपक्षयुक्त घात-प्रतिघात (की बातें) उठ रही थीं। परंतु वह कुछ भी निश्चय नहीं कर पा रही है।

रामलाल बाएँ करवट को बदलकर दाहिने करवट सोने लगा है। पहचाने जाने के भय से रमा कठपुतली की तरह स्थिर हो गई है। दो-तीन क्षणों में ही रामलाल लंबे निःश्वास छोड़ने लगा है। रमा समझ रही है पिताजी अच्छी

(निश्चिंत) तरह सो रहे हैं इसलिए वह फिर से उनके पैर दबाने लग जाती है। अब (फिर) क्रमशः दोनों हाथ, पीठ, कंधे को धीरे-धीरे सरलता से दबाती है।

–क्या सिर में तेल भी लगाना चाहिए? रमा ने अपने आपसे पूछा। स्वयं ही उत्तर मिला–क्यों नहीं लगाना चाहिए? यह व्यक्ति तो हमारा जन्मदाता है। रोग से जर्जर इसे शारीरिक सेवा की बहुत आवश्यकता है। संतान को ही वह सेवा करनी चाहिए। श्यामलाल (इनका) औरस पुत्र नहीं है। ठीक है, वह रामलाल की सेवा न करे, परंतु रमा तो उसके वीर्य से उत्पन्न हुई है। उसका तो यह पवित्रतम कार्य है।

हथेली में हिमकल्याण तेल लेकर रमा श्रद्धापूर्वक पिता के अस्त-व्यस्त बालों में लगा रही है। कुंद पुष्प की पंखुड़ी के समान कोमल अँगुलियों के अग्रभाग से पिता के बालों को सहलाती, हिलाती, डुलाती रमा अपने जीवन में पहली बार सेवाधर्म के अकल्पनीय संतोष का अनुभव कर रही है। अधसोया रामलाल भी बीच-बीच में सुख-संतोष-सूचक शब्दों को अस्पष्ट रूप से बोलता हुआ शांत सो रहा है, परंतु अचानक उसकी नींद टूट जाती है। पिशाच से पकड़ी जाती हुई बालिका के समान रमा तेल-सने हाथों से ही घर के अंदर भाग गई।

जागकर उठा हुआ रामलाल प्रत्येक अंग में व्याप्त संवाहन-तृप्ति (दबाए जाने का संतोष) का अच्छी तरह अनुभव कर रहा है। शरीर में सिंचन सा हो गया है। चेतना ने हिंडोले के सुख को प्राप्त कर लिया था। तो किसने मेरी सेवा की है? सौभाग्यवती ने? नहीं, नहीं। वह तो पानी का गिलास भी देने नहीं आई थी। लगता है कहीं बाहर गई है। तो क्या यह रमा ही थी? उसने ही पहले मुझे पानी दिया था। लगता है उसने ही मेरी सेवा की! अहा! सारी पीड़ा निकल गई। इस समय शरीर कपूर की तरह शीतल, समुद्र के फेन तरह लघु (हलका) तथा ताजे मक्खन की तरह कोमल लग रहा है। हे प्रभो! मेरी बेटी इतनी गुणवती है? मुझ किसान (हलवाहे) ने अपने रत्न और माणिक्य (लाल) को नहीं समझा (पहचाना)। अत्यंत निष्ठुर (कठोर) कसाई जैसे हृदय वाले, पिता नामक मुझ क्षुद्रजीव को सर्वथा धिक्कार है।

वेदना से रामलाल के नेत्र सूज गए और निरंतर बहती अश्रुधारा से तर हो गए। मानसिक संताप में डूबा हुआ रामलाल सोचने लगा–मुझ नृशंस हत्यारे ने पुत्र के लोभ में अपनी कन्याओं की बहुत उपेक्षा की है। हाय! घर की मैना

की उपेक्षा कर मैं कुंठित कंठ वाले तोते को ले आया? यदि प्रारंभ से ही मेरी कन्याएँ वात्सल्य-प्रेम से लालित हुई होतीं तो अवश्य ही उनमें सद्गुणों का विकास हुआ होता। मुझ नृशंस को देखते ही ये किशोर नीलगायों की तरह यहाँ-वहाँ भाग खड़ी होती हैं। मैं इनका पिता बनने योग्य नहीं हूँ। मैं तो सर्वथा बहेलिया हूँ बहेलिया!!

इसी बीच सौभाग्यवती आ गई। पति को उठे हुए और चिंतित देखकर वह बोली—क्या हुआ? क्या कहीं दर्द हो रहा है? मैं तो डॉ. विद्याप्रसाद मिश्र के पास गई थी। मैंने सुना था कि वह भलीभाँति रोग का परीक्षण करके (खोज कर) उपचार करते हैं। आज ही रात्रि आठ बजे वह आपको देखने आएँगे। आप चुपचाप हैं, कुछ बोलते क्यों नहीं?

—क्या बोलूँ सौभाग्यवती। संपूर्ण रामायण राममंत्र में समाया हुआ है। सजल नेत्रों से रामलाल बोला।

—साफ-साफ कहो। मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा है। देखती हूँ, मुझे लगता है आज सूर्य पश्चिम दिशा से उदित हुआ है। पत्थर भी द्रवित हो रहा है। क्या हुआ?

—कुछ भी नहीं। अरे भोली! कुछ और मत सोचो। श्यामलाल कहाँ है?

—क्या मुझसे कहकर कहीं जाता है? भोजन के लिए ही घर को पहचानता है। वह तो सर्वथा स्वतंत्र हो गया है।

—सौभाग्यवती! यदि यही हम दोनों का कुलदीपक है, तो निश्चित ही मेरा घर अंधकार से भर जाएगा। सौभाग्यवती कुछ नहीं बोली।

—तुमने मुझे बहुत रोका था। तुमने कहा था कि पुत्र और पुत्री में कोई अंतर नहीं है। मनोवांछित संतान का जन्म तो भाग्य के अधीन है। उसमें पुरुष का कोई अधिकार नहीं है। परंतु मुझ मूर्ख ने तुम्हारा भी तिरस्कार किया और मंद बुद्धि वाले इसको अपना पुत्र बनाने के लिए ले आया। यह मूर्ख नगर की गलियों में, चौराहों पर डोलता हुआ एक बार भी मेरी अवस्था, मेरे रोग की चिंता नहीं करता है। एक बार भी मेरे बिस्तर के पास आकर उस सुअर ने मेरी कुशलता अथवा स्वास्थ्य के विषय में नहीं पूछा।

रोती हुई सौभाग्यवती ने कहा—क्रोध मत करो। इस चिंता से क्या लाभ होगा?

—रमा कहाँ है? उसे बुलाओ तो। रामलाल ने सौभाग्यवती से कहा।

—क्या वह यहाँ आएगी? आश्चर्य से आँखें फाड़कर सौभाग्यवती ने

कहा। ये तो आपको देखते ही काँप जाती हैं।

—सौभाग्यवती! क्या सचमुच मैं वधिक-जैसा दिखाई देता हूँ?

—प्रेम ही हृदयों को बाँधता है। प्रेम होने पर सिंह भी मित्र बन जाता है। परंतु प्रेम के अभाव में छोटी-सी बिल्ली भी देखकर भाग जाती है।

—ठीक है। उसे बुलाओ।

—बुलाती हूँ। रमा! बेटी रमा! यहाँ तो आओ। माता के वचन सुनकर अपने अपराध की शंका करती हुई, तिरस्कार के भय से विह्वल रमा धीरे-से आकर दरवाज़े के कोने में खड़ी होकर बोली—माँ! आपने बुलाया! क्या करना है?

—बेटी! मैंने नहीं बुलाया। ये तुम्हारे पिताजी तुम्हें देखना चाहते हैं।

—बेटी रमा! यहाँ आओ और सभी कन्याएँ (बेटियाँ) भी आएँ।

सभी धीरे-धीरे एक-दूसरे को प्रेरित करती हुई (ठेलती हुई) एक-दूसरे को आगे करती हुई जैसे-तैसे आईं। रामलाल सजल नेत्रों से अपनी सभी कन्याओं को वात्सल्य-भरे हाथों से सिर सहलाकर, चूमकर पास में खींचकर क्रमशः प्यार करने लगा। अभूतपूर्व दृश्य था। आज पहली बार रामलाल संतान के सुख का अनुभव कर रहा था।

—सौभाग्यवती! मेरी बेटियाँ शतपर्विका (दूब) की तरह हैं। जैसे हरे रंग की दूब भवन के द्वार की शोभा बढ़ाती हैं, बिस्तर में रूई के बिछावन (गद्दे) आदि की समानता रखती हुई सुख देती है, अपने नए-नए अंकुरों से पशु-पक्षियों को प्रसन्न एवं तृप्त करती है, अपने आप, पोषण न करने पर भी, सिंचाई किए बिना ही, रक्षा किए बिना ही अपने भाग्य के बल से ही पुनः पुनः नई तथा हरी-भरी हो जाती है, उसी प्रकार मेरी बेटियाँ भी हैं। आज रमा ने मेरी जैसी सेवा की है उससे मेरा मोहांधकार दूर हो गया। सौभाग्यवती पूछो तो इसने क्या किया?

प्रातःकाल में शेफालिका पुष्प की लता के समान प्रत्यंग खिली हुई सौभाग्यवती मुस्कराने लगी। लगातार कन्याओं को पैदा करने के कारण, बिना कारण के ही वह अपने आप को दोष देती रहती थी। आज पति की सहृदयता और स्नेहोपचार से उसका वह पापभार भी जाता रहा।

उसने रमा को गोद में खींचकर पूछा—बोल रे! तूने आज कैसा जादू दिखाया? बीस वर्षों में भी मैं जो नहीं कर सकी, वह तूने मेरी अनुपस्थिति में चुटकी बजाते ही कर डाला?

–सौभाग्यवती! जाओ। अच्छी रसोई तैयार करो। कोई स्वादिष्ट और नया व्यंजन बनाओ। मैं रोगी नहीं हूँ। स्वस्थ हो गया हूँ। रोग तो मेरे मन में था, शरीर में नहीं। वह भी शीघ्र (तुरंत) दूर हो गया। रमा के विवाह से शेष रोग भी नष्ट हो जाएगा।

साड़ी के अंचल (छोर) से आँखों से आँसू पोंछती हुई सौभाग्यवती रसोई में चली गई।

भग्नपंजरः*

पराधीन सुख सपनेहुँ नाहीं। इस समाज में शील, सौंदर्य, वैदुष्य, धन एवं वैभव तथा चरित्र को अधिक तरजीह नहीं मिलती और न ही दुराचार पर क्रोध आता है! ऐसी जो मूल्यांकन-पद्धति है, वह बड़ी विचित्र है। समाज स्वार्थ के अनुकूल अवसर की ताक में रहता है। यदि स्वार्थ की सिद्धि भी हो जाए तो कपट मिश्रित असत्य भी बेहतर है, यदि स्वार्थ-सिद्धि न हो तो स्नेह, समुदाचार आदि गुण भी बेकार ही हैं।

पिता के घर के बाहरी बरामदे में मचिया पर बैठकर फटी अँगरखी (बनियान) को जतन से सिलती हुई वंदना यूँ ही सोच रही थी कि अकस्मात् ही उसे फटकार से भरी आवाज़ सुनाई पड़ी।

–अरी वंदना! कितनी देर इंतज़ार करूँ? मानो पर्वत उठा रही हो! छोटा-सा काम भी तुम निपटा नहीं पाती?

–आई पिताजी! यह फटा-चिटा अँगरखा धागों से सिलने के बाद भी अच्छा नहीं लग रहा है।

–सुन लिया, सुन लिया। ज़्यादा उपदेश मत दे। जल्दी-जल्दी सूई चला। दर्जी के पास न जाकर मैंने ही ग़लती की।

कमल के पत्तों पर गिरी ओस की बूँदों की तरह आँसू की लड़ियाँ वंदना की आँखों के कोणों से गिरने लगीं। वंदना अपने अतीत को याद करती हुई सोचती है–पिताजी का मेरे प्रति इतना क्षोभ क्यों? मैंने क्या अपराध किया है? अरे! हवन करने में भी दोनों हाथ जल रहे हैं? पिताजी भाभी जी को तो बहुत स्नेह करते हैं। उसकी कुशलता के लिए कितने चिंतित रहते हैं? छुपाकर उसके लिए मिठाई का दोना लाते हैं। आख़िर किस सबब से मुझ अभागिन को स्नेह नहीं करते? क्या विधवा होने के कारण ही सर्वगुण-विहीन हो गई हूँ?

इसी बीच पिताजी की पदचाप सुनाई पड़ी। वंदना जल्दी से उठकर द्वार

* टूटा पिंजरा

पर आ गई। कपड़ा देकर, पिता की उपेक्षाभरी निगाहों को न देखती हुई, अंदर चली आई।

पिता के जाते ही फिर वह चिंता में डूब गई। अपने कमरे में विस्तर पर लेटी हुई पिछली बातें याद करने लगी। एक साल में क्या नहीं हो गया? वंदना ने अपने विवाह को टालने के लिए क्या-क्या नहीं किया? लेकिन अनब्याही बेटी को दुर्वह भार मानने वाले उसके पिता ने एक भी नहीं सुनी। दोनों हाथों में हल्दी लगवाकर उसे दहेज के साथ ससुराल भेज दिया। यद्यपि वंदना का पति गुणहीन, कम पढ़ा-लिखा तथा मनचला था लेकिन सुरुचिसंपन्न बी.ए. पास वंदना ने भाग्य का खेल मानकर ससुराल में अपनी जगह बनाने की भरसक कोशिश की।

दो-तीन महीने में ही वह सभी की आँखों का तारा हो गई। जन्म से ही शहरी जीवन में पल-बढ़कर भी उसने पति के घर में अनेक दुलारे नामों से पुकारे जाने का सुखानुभव प्राप्त किया। धरती की तरह, सभी दुखों को ज्वालामुख के समान, अपने भीतर दबाकर, पति की खुशी में ही अपनी दुनिया मानने लगी। लेकिन निष्ठुर यमराज की आँखों में वंदना का सुख खटक रहा था। एक दिन उसके पति को, पके हुए गेहूँ के खेत में चूहे की बिल को मिट्टी के ढेलों से ढँकते हुए जहरीले साँप ने काट लिया। पति की, इलाज से बचाने के प्रयास में भी, मृत्यु हो गई।

तब से उसके जीवन में सुख-शांति के दिन नहीं लौटे। सगे-संबंधियों ने छाती-माथा पीठ लिया, वंदना के भाग्य को धिक्कारा तथा क़िस्मत का खेल मान कर सब हाथ पर हाथ रख कर बैठ गए। लेकिन वंदना के लिए अब सुख मृगमरीचिका की तरह हो गया। माता के आग्रह से वह मायके लाई गई लेकिन वहाँ भी माँ को छोड़ कर किसी अन्य की लाडली नहीं बन पाई। भाभी उसे दूध की मक्खी की तरह समझती रही। भाई भी उसको सुख में खलल डालने वाली मानता है। पिता भी उसको दुर्भाग्यशालिनी तथा कुल का नाश करने वाली ही मानता है।

धीरे-से कमरे में माँ ने प्रवेश किया। उसको देखते हुए वंदना खड़ी हो गई। माँ चुपचाप खड़ी होकर वंदना की पीठ पर कोमल हथेली रखकर बेटी के साथ ही खाट पर बैठ गई।

–बेटी! बल्ब भी नहीं जलाया तुमने? यह क्या है? अँधेरे से अँधेरा पैदा होता है और जोत से जोत!

–माँ! इसकी मुझे ज़रूरत नहीं थी।

–बेटी! जानती हूँ। परंतु अंधकार में विलीन होकर तुम क्या करना चाहती हो? उजाले को पाने का प्रयास करो। तुम बी.ए. पास हो। क्या तुमने गीता का यह वाक्य नहीं पढ़ा कि इस आत्मा को दुखी नहीं करना चाहिए।

–माँ! मेरा जीवन अंधकार से घिरा हुआ दुखी है। यह अंधकार कभी भी सूर्योदय नहीं देखेगा माँ! इस प्रकार रुँधे कंठ से बोलती हुई वंदना विस्तर पर अचेतन-सी हो गई। बहुत समय तक माँ उसको समझाती हुई वहीं खड़ी रही।

जूते की आवाज़ से ही वह समझ गई कि पिता जी आ रहे हैं। आते ही वह तूफ़ान-सा उत्पन्न कर देते थे। वंदना कहाँ है, सारा दिन वह क्या करती है? कहाँ है विधुभूषण? अरे! बहू ने कुछ खाया कि नहीं? सौभाग्यवती! मेरे कपड़े हैंगर पर टाँग दो। हे भगवान्! इस घर में सभी स्वतंत्र हैं। कौन किसकी सुनता है? अच्छे-बुरे की अपेक्षा कौन करता है? मेरे कपड़े मैले पड़े हैं। लेकिन कौन धोबी को दे?''

इस समय भी वही सब बोलते हुए वंदना के कमरे के पास आ गए। माँ-बेटी की अस्पष्ट बातचीत सुनकर और कमरे में अँधेरा देखकर उनका पारा चढ़ गया। चिल्लाते हुए गैलरी से बरामदे तथा बरामदे से गैलरी तक चहलक़दमी शुरू कर दी। उनकी चीत्कार सुनकर उनकी पत्नी कमरे से बाहर आई और कुछ क्रोधित होकर बोली–''बूढ़े हो गए हो फिर भी बोलने की तमीज़ नहीं है। यह क्या बकवास कर रहे हो? वंदना ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है। वह बेचारी तो खुद ही मुसीबत के सागर में डूबी है। क्या इसीलिए ही उसे यहाँ लाए हो?''

पत्नी की फटकार सुनकर उन्होंने स्वयं को अपमानित महसूस किया और उनकी क्रोध की अग्नि और अधिक भड़क उठी। वंदना पर ही सारा आरोप लगाकर बोले–जब से यह यहाँ आई है, घर की हँसी ग़ायब हो गई है। कितनी बार मैंने समझाया–बेटी! कभी रामायण पढ़ो। गीता का पारायण करो। तुलसीदास या मीरा के कुछ भजनों को कंठ करो। हम लोग संस्कार-विहीन या नीची जाति के नहीं हैं। हम तुम्हारा पुनर्विवाह-संस्कार करने में समर्थ नहीं हैं। ऐसी स्थिति में व्रत, उपवास और धर्माचरण के द्वारा ही जीवन-यापन किया जा सकता है। परंतु यह अभागिन वह सब कुछ नहीं करती।''

–अगर उपदेशों की पिटारी, ख़त्म हो चुकी हो तो चुप हो जाओ। थोथा चना तो घना बजता ही है, जानती हूँ। लेकिन गरजते बादल बरसते नहीं।

उपेक्षा से वंदना की माँ ने कहा।

–तुम मूर्ख हो, तभी तो इस बिल्ली को शेरनी बना रही हो। अपने प्रयासों का अच्छा फल भी देखोगी। गुस्से से यूँ कहते हुए गृहपति घर से बाहर चले गए।

वंदना ने उठकर बल्व जलाया। पिता की बातें सुन-सुनकर घाव हरे हो गए। किसलिए उन्हें पुत्री अच्छी नहीं लगती है? शुरू से ही कन्या को बोझ समझते हैं। यह अनेक विद्याओं के पंडित हैं। सरकारी कार्यालय में अनेक वर्षों तक सेवा करने के बाद तथा सैकड़ों अनुभूतियों को अनुभव करने के बाद सेवानिवृत्त हुए हैं। परिपक्व बुद्धि वाले हैं यह, फिर भी ऐसी हृदयहीनता?

गाँव के लोकगीत की कुछ पंक्तियाँ वंदना को याद आती है : पुत्र प्रतिक्षण स्नेहरूपी तेल से भरे हुए घर के दीपक होते हैं/कन्याएँ दिन में उगे हुए तारे जैसी हैं जो सूर्य के निकलने पर ग़ायब हो जाते हैं! हे तात! लड़के फल के रसों को खा-पीकर पुष्ट हुए पिंजरे के तोते के समान हैं/लेकिन कन्याएँ घर के पेड़ की चिड़ियों की तरह हैं जो चुटकी बजाते ही उड़ जाती हैं।/अन्न, धन तथा स्वर्ण जैसे पुत्र सभी के आभूषण होते हैं/हे तात! कन्याएँ देव-प्रसाद के समान हैं जो दान के द्वारा वितरित हो चुक जाती हैं।[1]

सच है। मैं भी नाममात्र के लिए शेष रह जाऊँगी। वंदना शेफाली पुष्प की तरह गर्म आँसू रूपी फूलों को छोड़ती हुई सोचती है–अरे! किस गुण से पुरुष विद्वान् होते हैं? क्या धमग्रंथों में जो पढ़ा जाता है वह जीवन में भी आचरण किया जाता है? किस निगाह से पिताजी मुझे देखते हैं? किस हृदय से मुझे अनुभूत करते हैं? या किस विवेकज्ञान से मुझे उपदेश देते हैं?

पिता भाभी के सुखों की कितनी चिंता करते हैं और मुझे शापित पत्थर बनी अहल्या की तरह समझते हैं? भस्म हुए मेरे सुख-संसार को तनिक भी याद नहीं करते? आख़िर क्यों? क्या मेरे अंदर चेतना नहीं है? क्या मेरी सुख

---

1. मूल लोकगीत इस प्रकार है–
   वेटवा त हौवें वावा! घर केर दियना नेहिया ते नित भरि जाइँ।
   विटिया त हौवें वावा! भोर कै तरइया उवतै सुरुज गलि जाइँ।।
   वेटवा त हौवें वावा! पिंजरे कउसुगना छन'छन फर-फूल खाइँ।
   विटिया त हौवें सौहें नीम कै चिरइया चुटुकी वजत उड़ि जाइँ।
   वेटवा त हौवें वावा! अन-धन-सोनवाँ सवकै गहना वनि जाइँ।
   विटिया त हई देउता कै परसदिया वँटतै-वँटत चुकि जाइँ।।

की या भोग की बलवती इच्छा नहीं है? मेरी भी गोद में कोई सुंदर चाँद किलकारी मारे! मेरे भी वक्षस्थल में दूध की गंगा धीरे-धीरे वहे। मेरा भी कोई जीवन का सूत्रधार हो जिसके वक्ष पर सिर रखकर मैं भी अपने अतीत को भूल जाऊँ। वह सब कुछ मेरी भी तमन्ना है जो भाभी की है। लेकिन पिताश्री उसके संदर्भ में मेरी चिंता नहीं करते।

विधवा हो गई हूँ, इसमें मेरा क्या अपराध है? विधाता के द्वारा यह जीवन जीने के लिए दिया गया है। मैं भी गुज़र-वसर करती हूँ। मेरा क्या अपराध है? जो मुझ असहाय को छोड़कर, शीघ्र ही मुझे अमंगलकारी विधवा वना कर भाग गया। मेरे सुख-महल को भस्म करके, ग़ायव होकर क्या उसने अपराध नहीं किया? क्या पति के वियोग में भी जीवित रहते हुए कुंती ने अपराध किया, दुर्गावती ने गुनाह किया, देवी इंदिरा ने अपराध किया? क्या पुनर्विवाह मेरे लिए पापकारक ही सिद्ध होगा, पुण्य-जन्य नहीं? आँधी से ध्वस्त कुटिया को सभी फिर से व्यवस्थित करते हैं। गंदे पानी को स्वच्छ करके पीते हैं। रुग्ण शरीर को दवाओं के उपचार से स्वस्थ वनाते हैं। तो क्या वैधव्य ही असाध्य रोग है?

न जाने कव और कैसे आँखें लग गई। माता भोजन के लिए जरूर आई होगी। लेकिन पीड़ा से जर्जर पुत्री को गाढ़ी निद्रा में सोते हुए देखकर विना कुछ कहे चली गई होगी।

मध्य-रात्रि में वंदना की आँखें अपने आप खुल गईं। कार्तिक महीने की रात उत्तरोत्तर ठंडी होती ही है। आँगन में लगे बरामदे में छत से लटके डारे पर कंवल आदि ऊनी कपड़े रखे हैं, ऐसा वंदना को याद आया। अच्छा, वहाँ से एक चादर ले ली जाए नहीं तो नींद नहीं आएगी, यह सोचकर जैसे ही वह बरामदे में आई वैसे ही भाभी के कमरे से लगातार वाहर निकलती हुई सीत्कार की आवाज़ कान के पर्दे को फाड़ने लगी! न चाहते हुए भी वह कुछ समय तक मूर्ति की तरह वहीं खड़ी रही। फिर अचानक ही भाभी का कमरा शांत हो गया।

वंदना बिना पैरों की आहट किए अपने कमरे में आ गई। लेकिन यह क्या? पिताजी इस समय भी नहीं सोए? माँ के साथ कुछ बातचीत कर रहे हैं। उसके मन में आया–कहीं माँ मेरे भविष्य के वारे में ही पिता के चरणों में अनुनय-विनय न कर रही हो। उनकी बातें सुननी चाहिए। धीरे-से वंदना कमरे के पास पहुँच गई और सुनने लगी।

–भाग्यशालिनी! मैं बूढ़ा हो गया हूँ, यह सोचकर तुमने सब कुछ भुला दिया! कभी पानी के लिए भी नहीं पूछती हो।

–क्यों झूठ बोलते हो! बच्चे बड़े हो गए हैं और विवाहिता पुत्री दो बार गमन कर चुकी है। घर में बहू आ गई है। क्या अब भी सब कुछ पत्नी को ही करना चाहिए?

–अरे सुनो! बेटी, बेटे और बहू को मैं नहीं जानता। मेरे लिए तो तुम्हें ही सब कुछ करना है। अपना हाथ तो बढ़ाओ ज़रा। मैं तुमहें अपने हृदय की संवेदनशीलता दिखाऊँ।

–हँसती हुई माँ बोली–भोग के लिए लालायित तुम्हारे हृदय को समझती हूँ! अरे भले आदमी! हरिनाम को स्मरण करने का यह समय आ गया है।

–होगा। वह तो ब्रह्मांड-बेला में करूँगा ही। इधर तो आओ।

इसके बाद वंदना सुन नहीं सकी। उसने सब कुछ समझ लिया। सारा धरामंडल उसे पहिए की तरह घूमता-सा दिखाई दिया। उपदेशपरायण बासठ वर्षीय पिता की भोग इच्छा ने उसके धैर्यरूपी वृक्ष को अचानक ही गिरा दिया।

यही क्षेत्रपुरुष (खेत का धोख) मुझे वैराग का उपदेश देता है? वंदना दुखपूर्वक सोचती है। बुढ़ापे में भी जिसकी लिप्सा शांत नहीं हुई वही मुझ बीस वर्षीया युवती को तपस्विनी के रूप में देखना चाहता है! हे करुणावरुणालय! तुम ही निहारो। अपने द्वारा बनाए गए पुरुष नाम के इन मिट्टी के खिलौनों को! अब न यह मेरा पिता है और न मैं इसकी बेटी! अपने भविष्य-पथ का निर्माण मुझे स्वयं ही करना है। सहृदया माँ पुनर्विवाह के लिए मुझसे कई बार कहती रही है। मेरा सहपाठी जयदेव अब भी मेरा हाथ माँगता है। उसके साथ रहते हुए, पत्नी-धर्म का पालन करते हुए मैं समस्त लौकिक तथा पारलौकिक कल्याण को प्राप्त करूँगी।

जैसे-तैसे वह बिस्तर पर लेटी। लेकिन आँसुओं से भरी हुई पलकें सोने का प्रयास करने पर भी, बंद नहीं हो पाई। विचारों की उठा-पटक ने धारणा-शक्ति को कमजोर बना दिया।

वंदना किसी दैवी वाणी को सुनने का अहसास करती है। "उठो कल्याणी! टूटा हुआ पिंजरा है ये पिता का घर। इसे छोड़ो। जयदेव तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। अरे वंदना बेटी! पुत्र की कामना के लिए पुत्र प्रिय नहीं होता है। अपनी कामना के लिए पुत्र प्रिय होता है। तुम्हारे पिता में तुम्हारे प्रति आत्मीयता नहीं है। कुमारी होने पर भी तुम बोझ थीं इस समय भी तुम उनके

लिए बोझ ही हो। इसलिए हे सारिके! इस टूटे हुए पिंजरे को छोड़ दो और नीले आकाश-मंडल में विचरण करो। वहीं है जीवन। वहीं है तुम्हारा अभिलषित सहचर। वहीं है तुम्हारा चिर-इच्छित कल्पना का साम्राज्य।"

वंदना धीरे-से उठी। चादर शरीर पर रखकर, सोती हुई माता को द्वार से ही नमन करके, बंद दरवाज़े को खोलकर वह ढलती हुई रात के अँधेरे में गुम हो गई।

ताम्बूलकरंकवाहिनी*

दरवाज़े पर खट्खट् की ध्वनि सुनाई पड़ रही है। आधी रात बीतने को है, भला कौन होगा? राजमहल के समीप ही स्थित अपने आवास-कक्ष में पलंग के ऊपर लेटा हुआ पांड्येश्वर का राजकवि हस्तिमल्ल सोचने लगा। दरवाज़ा खोलने की आग्रहभरी ध्वनि उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही है। अब तो देखना ही है कि कौन है जो धृष्टता का आचरण कर रहा है? यह कोई सभ्यजनोचित व्यवहार नहीं है और न ही मेहमानों लायक् आचरण (कि वे आधी रात में आएँ)।

खुनसाया हुआ सा राजकवि कंधे के ऊपर उत्तरीय डालकर, उद्वेग की मुद्रा में दरवाज़े के पास आया।

–कौन दरवाज़ा पीट रहा है? हस्तिमल्ल ने पूछा।

–पितृव्यचरण! द्वार खोलिए। जल्दी खोलिए। मैं हूँ वीरपांड्य जटावर्मा...। बाहर ऐसा सुनाई पड़ा।

–अरे बेटा वीरपांड्य! तुम हो? आओ, आओ। इतने घने अंधकार में कैसे आ रहे हो? कुशल तो है? दरवाज़ा खोलते हुए हस्तिमल्ल ने, एक ही साथ अनेक प्रश्न पूछ डाले घबराहट में। रोते हुए राजकुमार ने कहा–पितृव्यचरण! इस समय कुशल कहाँ? पांड्यवंश का सूर्य अस्त हो गया। मुझे उत्तराधिकार में नियुक्त देखकर, द्वेष करने वाले भाई सुंदरपांड्य ने पिताजी की हत्या कर दी है।

हृदय-शूल उत्पन्न करनेवाले, वज्रपात-सरीखे इस समाचार को सुनते ही राजकवि हस्तिमल्ल सिर थाम कर ज़मीन पर बैठ गए। उनकी आँखों में मोतियों जैसी बड़ी-बड़ी आँसुओं की बूँदें उभरने लगीं। भर्राए गले से हस्तिमल्ल विलास करने लगे–हाय! मेरे बचपन के सहचर! नाना कलाओं के सागर! हाय मेरे पांड्यमहेश्वर! अनेक शत्रु-नरपतियों को पद-दलित करने वाले! अपने भुजदंड से कर्णाट अवनीमंडल को अवलंबन देने वाले हाय महाराज कुलशेखर

* पनडब्बा लेकर चलने वाली

पांड्य मारवर्मन्! अपने बालमित्र मुझ हस्तिमल्ल को अकस्मात् छोड़कर कहाँ चले गए? हाय कर्णाटधरित्री! आज तू विधवा हो गई! विद्या, विनय एवं सच्चारित्र्य आदि गुणगण! आप लोगों का अब कौन आश्रय रहा? हाय रे दुर्भाग्य! सूखे बाँस की आग ने ही (समूचे) वेणुवन को भस्म कर दिया? तरंगमाला ने ही जलपोत को डुबा दिया? हाय रे दुर्दैव! पुत्र ने ही गुणसमूह के कल्पवृक्ष-सरीखे पिता को मार डाला? इस नाटकीय राजमद को धिक्कार है! भिक्षाटन कर लेना भी अच्छा है न कि यह राजैश्वर्य!

दोनों बड़ी देर तक, एक-दूसरे को बाँहों में समेट, विलाप करते हुए, चित्रलिखित से खड़े रहें वाणी अवरुद्ध हो उठी थी। कोई क्या कहे?

–पितृव्यचरण! अब क्या करना उचित है? आपको छोड़कर और कोई मेरा सहारा नहीं है। अब आप ही मेरे लिए पिता के समान हैं। आँसुओं को पोंछते हुए वीरपांड्य ने कहा।

–बेटे! डरो नहीं। धैर्य धारण करो। सूर्योदय से पूर्व ही, सौभाग्यलक्ष्मी पुनः तुम्हारा ही वरण करेगी। मुझ हस्तिमल्ल के जीवित रहते उस पितृघाती, नृशंस सुंदरपांड्य को चुल्लूभर भी पानी कर्णाट-मंडल में कौन देगा?

वत्स! प्रस्थान करो राजभवन को। मैं भी तुम्हारे पीछे ही पहुँच रहा हूँ। सामंतों, सेनापति तथा महामात्य, सबको सच्चाई से अवगत करा कर, साथ ही लेकर आता हूँ।

रक्षकों के साथ राजकुमार वीरपांड्य के चले जाने पर हस्तिमल्ल भी, बड़ी कठिनाई से धैर्य धारण कर भूतल से उठा। भयावह अर्धरात्रि है यह! सभी नींद में डूबे होंगे। थोड़ा विलंब करके ही प्रस्थान करना समीचीन तथा कल्याणकर होगा, ऐसा निश्चय किया पांड्येश्वर-राजकवि ने।

कलश से जल चषक में निकाल कर, गद्गद ध्वनि के साथ हस्तिमल्ल ने द्रुतगति से पिया। पाँव मानो शिला के भार से बोझिल हो उठे थे। थोड़ी देर सो लेना चाहिए। हस्तिमल्ल श्वेत प्रच्छद (चादर) से आवृत, नारियल की जटाओं से बने तकिये से युक्त सिरहाने वाली पलंग पर, सैकड़ों कोस की यात्रा संपन्न कर आए हुए बटोही की तरह निढाल हो गया।

चालीस वर्ष पुरानी घटनाएँ (हस्तिमल्ल के) स्मृति-पथ में आने लगीं। इतिहास-ग्रंथ के पन्ने एक-एक कर खुलने लगे। चोलराजाओं ने, पांड्य नरपतियों के साथ वैर बाँधकर उन्हें कितना ही उन्मूलित नहीं किया? कितना ही पीड़ित नहीं किया? ख्रिस्तीय दशम शतक के आरंभ में ही चोलनरेश परांतक प्रथम ने

पांड्य-साम्राज्य को समुच्छिन्न कर दिया था। पांड्य राजाओं ने हस्तभ्रष्ट साम्राज्यलक्ष्मी को (पुनः) प्राप्त करने के लिए कितने ही प्रयास नहीं किए? परंतु राजेंद्र चोल, कुलोत्तुंग प्रथम एवं कुलोत्तुंग तृतीय के द्वारा यथावसर, दुर्भाग्यग्रस्त पांड्य नरपति बारी-बारी से बुरी तरह पराजित किए गए, कदर्थित हुए तथा खदेड़ दिए गए।

हस्तिमल्ल को याद आता है। कुलोत्तुंग तृतीय ने पांड्येश्वर कुलशेखर जटावर्मा को पराजित कर द्रावणकोर का इलाक़ा छीन लिया था। परंतु साम्राज्यलक्ष्मी तो भाग्यक्रम से ही आती और जाती है।

चोलसाम्राज्य के पतन का दिन भी आ पहुँचा। पांड्येश्वर कुलशेखर जटावर्मा के पुत्र मारवर्मा सुंदरपांड्य ने भयावह युद्ध में चोलराज कुलोत्तुंग तृतीय को छिन्न-भिन्न कर दिया। उरैय्यूर (उरगपुरम्) तथा तंजापुर को भस्मसात् करके मारवर्मा ने चोल-साम्राज्य की गरिमा को धूल-धूसरित कर दिया।

उसी क्षण से साम्राज्यलक्ष्मी ने पांड्यवंश का वरण कर लिया। यद्यपि होयसल राजाओं की सहायता से चोल राजाओं ने अपने अभ्युदय-हेतु बहुशः प्रयास किया। परंतु ऐसा करता हुआ भी परम साहसिक राजराज चोल पांड्य राजाओं द्वारा बलपूर्वक उपमर्दित कर दिया गया। दोनों राजवंशों का यह संघर्ष अनेक बार नए-नए रूप में उभरा। परंतु मारवर्मा सुंदरपांड्य द्वितीय के वंशधर जटावर्मा सुंदरपांड्य ने चोलसाम्राज्य को नामशेष (ही) कर दिया।

पांड्येश्वर जटावर्मा को स्मरण करता है हस्तिमल्ल। हस्तिमल्ल के पितृचरण गोविंदभट्ट जटावर्मा के द्वारा ही 'राजकवि' के पद पर नियुक्त किए गए थे। राजप्रसाद के पास ही था गोविंदभट्ट का भी निलय। इसी परिसर में हस्तिमल्ल राजकुमार कुलशेखर पांड्य मारवर्मा के साथ कभी 'युग्मायुग्म' (जूँस-ताख) तो कभी 'कू-कूरुतम्' (लुकाछिपी) और कभी 'गोपितान्वेषणक' (बुझौलिया) खेला करता था।

उस स्फटिक के समान निर्मल शैशव में ही हस्तिमल्ल और कुलशेखर की, न टूटने वाली मैत्री पैदा हो गई थी। एक के बिना दूसरा आराम से सो नहीं पाता था। दोनों साथ ही भोजन करते थे। साथ ही मृगया खेला करते थे। और साथ ही शास्त्र भी पढ़ा करते थे। और अधिक क्या? शरीर और उसकी परछाई के समान दोनों युतसिद्ध (साथ रहने वाले) थे।

दोनों बच्चों का विलक्षण सख्यभाव देखकर पांड्येश्वर जटावर्मा तथा राजकवि गोविंदभट्ट अतिशय आनंद का अनुभव करते थे।

बचपन धीरे-धीरे बीत गया। दोनों के कपोल-मंडलों पर शैशव-रूपी चंद्रमा को ग्रसने वाली राहु की छवि (कालिमा) के समान रोमराजि दीखने लगी। इसी समय कुलशेखर अपने पिता पांड्येश्वर द्वारा साम्राज्य-पद पर अभिषिक्त कर दिए गए। हस्तिमल्ल भी विविध शास्त्रों के ज्ञान में पारंगत होकर, प्रतिभा-समुल्लसित कवित्व के संस्कार वाले, मित्रकल्प (नए) नरेश द्वारा (अपने पिता) गोविंदभट्ट के स्थान पर राजकवि नियुक्त कर दिए गए।

कुछ ही वर्षों में कुलशेखर मारवर्मा ने समूचे दक्षिणापथ-साम्राज्य को निष्कंटक बना दिया। होयसल-नरेश तो उसके पिता द्वारा ही उन्मूलित किए जा चुके थे। काकतीयवंशी गणपति को उपमर्दित कर जटावर्मा ने कांची पर अधिकार कर लिया। श्रीरंग-क्षेत्र तथा चिदंवर तीर्थ में उसने सुवर्ण-कलश वाले देवालय निर्मापित कराए।

कुलशेखर ने भी पिता के यश को बढ़ाते हुए, दिग्विजय की। कोल्ल राज्य को जीतकर उसने उत्तर दिशा में नेल्लोर तक विजय-पताका फहराई। प्रतिपक्ष (शत्रुओं के) लिए भयावह कुलशेखर की सेना ने प्रत्यवायभूत समुद्र को भी पार कर सिंहल-द्वीप के अधिपति पराक्रमबाहु को सरलतापूर्वक पराजित कर दिया। इस लोकयशस्कर समर-अभियान में अनाहत-पौरुष पांड्येश्वर मारवर्मा ने भगवान तथागत के पवित्र दंतावशेष सिंहल-नरेश से ज़बर्दस्ती छीन कर ही (अपनी) राजधानी की ओर प्रस्थान किया।

कुलशेखर के संरक्षण में दक्षिणापथ की प्रजा ने महान सुख का अनुभव किया। दस्युओं की कथाएँ शांत हो गईं। चतुर्दिक् सौराज्य स्थापित हुआ। पंडित, कवि, कलाकार और वैदेशिक यात्रीगण भी कुलशेखर की राजसभा को अलंकृत करने लगे। मारवर्मा कुलशेखरपांड्य ने धर्मराज्य स्थापित किया।

सिंहल-विजय के अवसर पर महामात्यों तथा प्रजाजनों ने (मिलकर) विशाल अभिनंदन आयोजित किया। कलाकारों द्वारा नाना प्रकार के कार्यक्रम प्रदर्शित किए गए। वेनिस नगर से आया विदेशी यायावर मार्कोपोलो भी उस महोत्सव की शोभा को देख-देख कर विस्मित हो उठा था। पांड्य-साम्राज्य को उसने, अपने विवरणों में, पृथ्वी का सर्वाधिक सुंदर, सर्वाधिक ऐश्वर्यशाली तथा समूचे भारत में श्रेष्ठ राज्य घोषित किया।

कुलशेखर को नायक कल्पित कर तथा राज्यलक्ष्मी के विरह में व्यथित उत्प्रेक्षित कर, ध्यानपूर्वक पढ़ी गई अपनी कविता को भी स्मरण करता है हस्तिमल्ल—इधर चोलरमणियों के केशपाश में ग्रथित मल्लिका पुष्पों के घनामोद

(सांद्र गंध) के कारण सुखद, कर्णाटरमणियों के कुच-कलश पर उपलिप्त चंदनरस के सहचर तथा महाराष्ट्र-अंगनाओं की वदन-मदिरा के घ्राण से अतिशय सरस पवन (भी) विरही के (राजलक्ष्मी वियोग-जन्य) दाह को शांत नहीं बना पा रहे हैं।

काव्य का आनंद लेकर हर्षोत्फुल्ल हुए कुलशेखर द्वारा स्वयं उठकर अपने कंधे पर स्थापित किए गए प्रावारक (उत्तरीय) को आज भी हस्तिमल्ल अनुभव कर रहा है। हे परमेश्वर! वे आनंद में डूबे दिन कहाँ चले गए?

सिंहलद्वीप की विजयश्री से आप्यायित शरीरवाले (महाराज) कुलशेखर भारतभूमि में लौटते हुए, भगवान भूतभावन शिव को प्रणामांजलि द्वारा समर्पित करने के लिए रामेश्वर-तीर्थ गए। राजकवि हस्तिमल्ल भी साथ था। रामेश्वर मंदिर में, दिग्विजयी, पराक्रमबाहु को जीतने वाले पांड्येश्वर को देखने की आकांक्षा से प्रजा, बड़ी तैयारी के साथ मंदिर-प्रांगण में प्रविष्ट हुई। सारा-का-सारा शून्य आकाश उपायनों (उपहारों) आचार-प्रदर्शनों, आगे-आगे चलने वाले चारणों की विरुदावलियों तथा वेदपाठी ब्राह्मणों के आशीर्वचनों से मुखर हो उठा।

लज्जा के बोझ से झुकी हुई भौहोंवाली आँखों का एक जोड़ा प्रतीक्षारत था मंदिर से लौटते हुए युवा कुलशेखर के लिए। यह थी रामेश्वरतीर्थ में रहने वाली दिवंगत सामंत नटराज की पुत्री मालिनी। जनता की भीड़ से डरी हुई वह बीच रास्ते खड़ी थी। एक-एक निमेष उस नवनीत-कोमलांगी (बाला) के लिए युग के बराबर हो चला था।

अकस्मात् ही पास आ पहुँची राजा की पालकी। शील-समुदाचारवश जिसकी वाणी अवरुद्ध हो उठी थी, पहले किए गए संकल्प नष्ट हो चुके थे तथा विकल्पों की बाढ़ सी आ गई थी ऐसी मालिनी के होंठ थरथरा करके ही रह गए (परंतु) वह कुछ कह नहीं सकी। शीघ्रता में, केवल एक अधखिला गुलाब का फूल ही, वह कोमल अंगुलियों से आगे कर सकी—पांड्येश्वर को समर्पित करने की आकांक्षा से।

द्रुतपद स्कंधहारों (कहारों) द्वारा शिविका ले जाई जा रही थी। परंतु महाराज मारवर्मा तो दूर से ही उस रूप-लावण्य-प्रतिमा को देख रहे थे। काम के दर्प को भी नष्ट कर देने वाली उस सुंदरी बाला को पार करती शिविका को, आदेशपूर्वक रोककर, स्वयमेव शिविका से उतर कर कुलशेखर ने मुस्कराते हुए, स्नेहपूर्वक पुष्पोपहार ग्रहण किया। मालिनी ने राजा की इस अभ्युपपत्ति (अनुकंपा) से मानो संपूर्ण भू-लोक के ऐश्वर्य को ही प्राप्त कर लिया।

—क्या नाम है? कुटिल मुस्कान के साथ पूछा मारवर्मा ने।

—कुटुंबियों द्वारा 'मालिनी' संबोधित की जाती हूँ। लज्जा से दुहरी हुई मालिनी ने जैसे-तैसे उत्तर दिया।

—बहुत अच्छा। सुंदर! सचमुच मालिनी ही प्रतीत हो रही हो। तुम्हारे परिवार में और कौन हैं?

—माँ, एक छोटी बहन शालिनी तथा एक भाई अरुणराज।

—और तुम्हारे पिताजी?

इस प्रश्न का उत्तर दिया मालिनी के नेत्र-प्रांतों से गिरे दो-तीन अश्रुबिंदुओं ने। विद्युत्गति से मुड़कर, वह राजमार्ग से सटी सघन वृक्षों की वीथियों में ओझल हो गई।

उस रात कुलशेखर को पूर्ण नींद नहीं आई। उस एक जोड़ी आँख को ही चारों ओर निहारता हुआ वह, सोने का प्रयत्न करता हुआ भी, किसी भी प्रकार सो नहीं सका। न उसने ग्रहण किया कोई भोजन और न ही पिया नारियल का पानी। न ही उसने आग्रहपूर्वक ग्रहण किया पान का बीड़ा।

एक कान से दूसरे कान तक पहुँची यह बात राजसखा हस्तिमल्ल तक आ पहुँची। राजकवि, कोई अनर्थ न घट जाय, इस भय से तत्काल ही स्कंधावार में स्थित पांड्येश्वर के खेमे में पहुँचा। हस्तिमल्ल को देखते ही मारवर्मा की दृष्टि सिंदुवार कुसुम-मंजरी की शोभा को प्राप्त हो उठी।

—राजन्! यह क्या सुन रहा हूँ। न खा रहे हैं, न पी रहे हैं, न ही सुखपूर्वक भरपूर सो रहे हैं? क्या सचमुच अस्वस्थ हो गए हैं? या फिर किसी चंद्रमुखी के नयन-शर से विद्ध हो उठे हैं?

दुखती नाड़ी पकड़ ली थी हस्तिमल्ल ने। शय्या से ऊपर, आधे भाग से उठकर बैठे हुए, दुखी मारवर्मा ने, दाहिने हाथ से अपना चिवुक सहलाते हुए कहा—वैद्य के बिना रोग को भला कौन खोज सकता है? मदारी के बिना नागिन को भला कौन नचा सकता है?

—तो मित्रवर! स्पष्ट बताएँ। किस हरिणाक्षी का भाग्यसूर्य उदय का अभिलाषुक है?

—पूर्णिमा के चंद्रमा की चाँदनी-सरीखी वह बाला मालिनी नाम वाली है। उसके द्वारा उपहृत इस पाटल-पुष्प को मित्रवर देखें। अभी भी इसके परिमल से मेरा हृदय-मंदिर महक रहा है। हस्तिमल्ल! उसके विरह में मैं जी नहीं सकता।

कारण स्वयं को ही साम्राज्य का अधिकारी समझता था। भाई के अभ्युदय को न सह सक पाने के कारण, पाप के वशीभूत होकर, उसी ने गहरी नींद में सोए धर्मावतार पिता को, छलपूर्वक पशु की तरह मार डाला।

अतीत को स्मरण करने की गति भी कितनी वेगमयी होती है? कुछ ही निमेषों में हस्तिमल्ल ने चालीस वर्षों लंबी, कुलशेखर की जीवन-लीला को अपनी कवित्व-प्रतिभा के बल पर खुली आँखों देख लिया। उसके ऐसा सोचते ही सोचते मुर्गे की बाँग सुनाई पड़ी।

हस्तिमल्ल ने झटके के साथ शय्या छोड़ दी। सवेरा होते ही होते सब कुछ कर डालना है। भारत राष्ट्र की स्थिति को राजकवि भली-भाँति जानता है। दक्षिणापथ को छोड़ समूचा राष्ट्र ही प्रायः तुर्कों से आक्रांत हो उठा है। दिल्ली में बुरी तरह तप रहा है भारतीय राजवंशों के विनाशसूचक धूमकेतु (पुच्छल तारे) के समान अलाउद्दीन! अत्याचार ढाने वाली उसकी सेना मलिक काफूर के नेतृत्व में दक्षिण की ओर बढ़ी चली आ रही है।

इस समय पांड्य नरपतियों का कुल भी विपत्ति के मुख में जा पड़ा है। कुछ तो अवश्य ही करना चाहिए। प्राणों की बाजी लगाकर भी भ्रातृजाया-सरीखी राजमहिषी मालिनी की रक्षा करनी है। हस्तिमल्ल विद्युत् गति से चल पड़ा सेनापति के आवास की ओर!!

इक्षुगंधा

मीरजापुर ज़िले में कलक्टर के पद पर विद्यमान हूँ। जबसे यहाँ आया हूँ श्रीमती मेरी पत्नी जी इस जनपद की अरण्य-शोभा देखने को समुत्सुक हैं। अनेक यात्राओं के प्रसंग में देवी जी को भी साथ ले जा चुका हूँ। बहुत से पिकनिक-स्पॉट्स हम लोगों ने देखे भी। परंतु इतने से भी देवी जी की दिदृक्षा (देखने की ललक) शांत नहीं होती। मैंने समझाया। उकताओं नहीं, वर्षा ऋतु आते ही उन सारे स्थानों पर आपको ले चलूँगा।

यह ज़िला सचमुच स्वर्ग का एक टुकड़ा जैसा है। विंध्यपर्वत की श्रेणियों से यह चारों दिशाओं में घिरा हुआ है। कहीं सघन बाँसों के झुरमुटों से मंडित, कहीं ऊँची-नीची शिलाओं के रोड़ों से कँकरीला, कहीं छोटी-छोटी बावड़ियों से भरा-पुरा, कहीं विशाल धनखर खेतों से युक्त और कहीं सोन नदी की जलधारा से पवित्रित।

विंध्य की इन घाटियों में उद्योगपतियों ने अपनी-अपनी फ़ैक्ट्रियाँ लगा रखी हैं। पिपरी, ददरी, रिहंद इत्यादि स्थानों में अवस्थित बाँध भी कम दर्शनीय नहीं हैं। नयनाभिराम अनेक झरने भी जनपद की शोभा बढ़ाते हैं। रेणुकूट में हिंडालियम उद्योग भारत के उत्कर्ष को प्रकट करता है। अधिक क्या कहा जाय? जनजातियों पर्वतों एवं चट्टानों से पूर्ण भी यह ज़िला खनिज की दृष्टि से हमारे देश की धरती के रत्न-सदृश है।

इसी ज़िले में मैं कुछ महीनों से ज़िलाधिकारी नियुक्त हूँ। कार्यालय के निकट ही अपना सरकारी बंगला है जहाँ एक नौकर के रहने के लिए भी सर्वेंट क्वार्टर बना हुआ है। मेरी ही आयु का वंशीधर शर्मा मेरी सेवा के लिए सरकार के द्वारा नियुक्त है। देखने में पैंतालीस वर्ष का लगता है पर बाद में पता चला कि वह मात्र चालीस का ही है। मेरी पत्नी प्रभावती प्रायः वंशीधर की गृहिणी की आवश्यकता से अधिक प्रशंसा कर जाती है। रात्रि में शयनकाल में तो कम-से-कम एक-दो बार उसकी चर्चा आ जाना स्वाभाविक हो गया है। एक बार तो यह भी कहा—"सुनो, विधाता क्यों अन्याय किया करता है? तनिक देखो तो, वंशीधर

की पत्नी रूप और सौंदर्य की प्रतिमा है। ऐसा लगता है कि उसके दोनों गालों पर रक्त समुच्छलित हो रहा है, चंद्रमा की भाँति उसका मुखमंडल, अनारदानों जैसे दाँत, कनतदत्त की तरह उसके अधर तथा मृगशावक की तरह उसकी आँखें हैं। तीस वर्षों की होने के पश्चात् भी पच्चीस की लगती है। रूपलावण्य एवं गुणों की यह मूर्ति ऐसे विपन्न के साथ ब्याह दी गई है जो ठीक से उसका उदरपोषण भी नहीं कर सकता।''

–देवि! इसी प्रकार की विषमता से सृष्टि बनी है। सभी प्राणी अपने पूर्वजन्म के पाप-पुण्यों को भोगते हैं। सुख अथवा दुःख कोई देता नहीं, यही मैंने संस्कृत धर्म-ग्रंथों में पढ़ा है। पत्नी को कोई भी प्रश्न न पूछने का अवसर देते हुए मैं यह सब एक साँस में कह गया।

–तुम सभी पुरुष पत्थर-दिल होते हो। स्त्रियों की बात भी ठीक से नहीं सुन सकते। बुझे दिल से पत्नी ने कहा।

–रानी! तुम भी हर वक़्त सींग में मिट्टी लेपकर युद्ध के लिए तैयार रहती हो। क्या हमारा लेना-देना है वंशीधर की घरवाली से? मैंने भी तनिक क्रोधित होकर कहा।

–ठीक है, मैं अब अपनी जिह्वा को नियंत्रित रखूँगी। इसके बाद कुछ नहीं बोलूँगी। बुरा-भला कहते हुए वायु-वेग से प्रभावती अंदर के कमरे में घुस गई।

मैं भी समझता था कि प्रभावती सत्य ही कह रही है। परस्पर समान गुणों वाले वर-वधू को विधाता कहाँ मिलवाता है! दुष्यंत और शकुंतला की समानता तो एक अपवाद है जिससे विधाता को यश मिला। परंतु इस लोक में तो पग-पग पर विषम-साहचर्य विद्यमान है। जो सुंदर व धनवान् है वह कर्कशा तथा रूग्ण के साथ बुरी तरह से बँधा हुआ है, उसी प्रकार जो सौंदर्यशीलसुषमानिधानभूता हैं वे खंडितवृत्त वाले दरिद्रजनों के अधिकार में हैं। पर लगता है वंशीधर की घरनी वास्तव में सुंदर है, अन्यथा ईर्ष्याकषायित हृदय वाली दूसरी महिला के लिए रमणी का रूप आकर्षण की वस्तु न होती।

इसी प्रकार कुछ दिन बीत गए। यह बात भी विस्मृति के गर्भ में विलीन हो गई। न तो प्रभावती ने ही वंशीधर की पत्नी के विषय में पुनः कुछ चर्चा की और न ही मैंने ही कुछ पूछा। दफ्तर के कार्यों में इतनी व्यस्तता बढ़ गई है कि इस विषय में किसी का ध्यान ही नहीं गया।

जहाँ तक मुझे स्मरण है, मार्च का महीना रहा होगा। प्रशासनिक अधिकारियों

के लिए यह महीना कितना महत्त्वपूर्ण होता है यह किसी पढ़े-लिखे से छिपा नहीं है। उस दिन कमिश्नर साहब किसी महत्त्वपूर्ण कार्यवश मिर्जापुर आ रहे थे। उनके स्वागत के लिए मैंने पूरा प्रबंध कर रखा था। समस्त अधीनस्थ अधिकारियों एवं कर्मचारियों को पहले ही सब कुछ समझा दिया था।

सुबह नौ बजे ही ड्राइवर जीप लेकर आवास पर आ गया। वंशीधर भी मेरे साथ जाने के लिए उद्यत दिख रहा था। मैंने भी पूर्वनिर्धारित कार्यक्रम के अनुसार नौ बजे से पूर्व ही भोजन कर लिया था। फिर प्रभावती ने प्यार से पान का बीड़ा मुँह में डाला और टेढ़ी टाई की गाँठ अपने ही हाथों ठीक से बाँध कर घर के अंदर चली गई। जूते भी मैंने शीघ्रतापूर्वक पहन लिए फिर बीच में ही ऊँचे स्वर में आवाज़ दी–देवि प्रभावती! तनिक इधर आना।

कोई उत्तर नहीं सुना, न ही प्रभावती आई। शायद देवी जी रसोई के काम में उलझी हैं, ऐसा मैंने अनुमान लगाया।

–थोड़ा पानी पिला देना। पता नहीं आज दफ्तर में ठंडा पानी मिले या न मिले। पानी का गिलास लाना। कहा।

उत्तर के स्थान पर पुनः चुप्पी देखकर तनिक विस्मय भी हुआ। पर यह क्या? थोड़ी ही देर के बाद देखा कि एक-दूसरी अर्धअवगुंठित वदना रमणी हाथ में पानी का गिलास लेकर मेरी तरफ़ आ रही है। मेरा शरीर रोमांचित हो उठा। तो क्या यही चरित्र एवं सद्व्यवहार की मूर्ति, मिठास-सौंदर्य तथा सुकुमारता की त्रिवेणी, मक्खन जेसी गोरी कलाई वाली वंशीधर की पत्नी है जो विपत्ति के चक्रवात में फँस कर जीवन को ढो रही हे? शायद प्रभावती के संकोच वश ही आधे रास्ते रुक गई है।

–लाओ! लाओ! पहले ही बहुत देर हो चुकी है। आनन-फानन में मैं जल्दी से कह गया।

मेरी बात को सुनकर वह रमणी जो कि लज्जा के भार से पहले ही क्लांत हो रही थीं कुछ मंथर-गति से मेरी ओर बढ़ने लगीं। फिर जैसे ही उसने मुझे जलपात्र पकड़ाया उस मूर्ति को एक बार जी भरकर देख मैं विद्युत् गति से चीख पड़ा–''अरी! बिट्टी तुम?'' मेरे ऐसा कहते ही उसके हाथ से पानी का गिलास ज़मीन पर गिर पड़ा और वह जलशफरी की भाँति भाग कर घर में घुस गई।

तो क्या यही मेरी बचपन की सहचरी करुणा है जिसे प्यार से लोग 'बिट्टी' कहते थे? जीपयान में बैठ कर भी मेरा चित्त अतीत में कहीं और था। जीप चल रही थी, कभी सीधी कभी टेढ़ी, कभी ऊँचाई पर तो कभी ढलान पर।

ठीक इसी प्रकार मैं भी अपने विषम अतीत में विचरण कर रहा था। शरीर तो दफ़्तर की ओर जा रहा था परंतु मन ननिहाल में था।

बचपन की घटना थी यह। जौनपुर जिले के कान्हवंशीपुर गाँव में मेरा ननिहाल था। गाँव में प्रायः ब्राह्मण, अहीर एवं दफाली मुस्लिम रहते थे। ननिहाल में रहना मुझे बहुत ही अच्छा लगता था। विजयादशमी की छुट्टी में माँ जब वहाँ रहती थी तो मामा के गाँव प्रायः मैं जाया करता था। बिट्टी का परिवार मेरे नानाजी के बिल्कुल पड़ोस में था। बिट्टी पहली ही मुलाक़ात में मेरे चित्त में बस गई थी। यद्यपि उस अबोध बाल्यावस्था में मेरे अंदर पंचशरप्रभाव का अंकुर भी नहीं था, तथापि उसकी मुस्कान, उसकी बोली, उसकी चाल, उसकी चितवन सभी मेरे लिए संजीवनी का कार्य करते थे।

जब प्रथम बार मिला तब वह दस वर्ष की थी और मैं बारह का। शुरू के दिनों में प्रतिबिंब की भाँति हम दोनों दृष्टिगोचर होते थे। नानाजी का एक घना आम का बगीचा था। उसमें कहीं-कहीं निविड़ इक्षुगंधा का वन था। वर्षा के प्रायः समाप्त हो जाने पर एवं शरद ऋतु के आते ही इक्षुगंधा का यह वन धवल पुष्प-राशि से भर जाता था।

बिट्टी के साथ रहते हुए मेरा प्रायः सारा दिन इसी उपवन में बीतता था। इक्षुगंधा (काश) को उखाड़कर छत बनाई जाती थी। इधर-उधर उगे बेहया के खंभों को ज़मीन में गाड़कर उस पर इन कासों से पर्णशाला बनती थी। पर्णशाला में हम दोनों किसी कोने में शयनकक्ष तो किसी कोने में रसोई बनाकर खेलते थे। वहीं कभी बिट्टी विरह-विधुरा नायिका का अभिनय करती तो कभी मैं प्रवासी नायक का।

पता नहीं कब हमारी यह कौमार-क्रीड़ा आसक्ति का कारण बन गई। मामा जी के घर के बाहरी दालान में चारपाई पर लेटा प्रायः दिनभर मैं बिट्टी के घर की ओर टकटकी लगाए बैठा रहता। बिट्टी भी किसी-न-किसी बहाने बाहर निकलकर एक नज़र मुझे चाहत भरी दृष्टि से देख जाती थी।

संध्या के समय वह नित्य मामी जी के पास चूल्हा जलाने हेतु आग लेने आती थी। मेरे पास ही खटिया पर बैठकर वह प्रायः मामी जी से आग माँगती और कुछ समय के लिए मेरे नयनों को तृप्त करती।

मेरी हास्यप्रिय एवं मुँहफट मामी तो कभी-कभी उसे छेड़ भी देती थी—अरी बिट्टी! तुमने सुना नहीं, मेरे भांजे के साथ तुम्हारा ब्याह निश्चित हो गया है। इस नज़र से तो तू हमारी बहू है, फिर भी हमारे सामने खटिया पर टाँग पे टाँग

पसार के बैठने से तुझे लाज नहीं आती? घोर कलयुग है...फिर मामी की आधी बातें बीच में ही छोड़कर शर्म के मारे वह भाग खड़ी होती। वह सब आज भी याद आता है।

प्रयाग विश्वविद्यालय में मैं बी.ए. प्रथम वर्ष का छात्र था। इसी बीच मामा जी के यहाँ जाने का अवसर मिला। बिट्टी अब सोलह साल की हो गई थी और मैं भी काम-रहस्य में पारंगत अठारह साल का रसिक। मैंने देखा कि बिट्टी अब गंभीर जलपुष्करिणी की भाँति शांत थी। दुपहरी के फूल जैसे अरूणाभ अधर, लज्जाभार से झुकी भौहें, मृदुल एवं मंथर चाल, यत्नपूर्वक ढँके शरीर वाली तथा सारी चंचलता को त्यागकर मितभाषिणी बनी हुई बिट्टी मुझे पूरी तरह से विकल करती हुई भी विलक्षण ही दिख रही थी।

मैं अपने संपूर्ण ननिहाल-प्रवास में बिट्टी की संगति के लिए तड़पता रहा। संयोग से एक दिन वह शाम को मामी के पास आती मुझे दिख गई। पर घर में उस वक़्त मामी नहीं थी। इसे स्वर्णिम अवसर जानकर द्रुतगति से मैं बाहर के कमरे से अंदर वाले कमरे में आया और बिट्टी को बाँहों में भरकर उसके सुंदर एवं कोमल कपोलों पर कई चुंबन-चिह्न अंकित कर दिए।

-छोड़ो, मामी आ जाएँगी। बार-बार यही कहती रही वह, पर बिट्टी को फिर भी मैंने नहीं छोड़ा।

मैं प्यार जताते हुए बोला—बिट्टी! क्या मैं तुम्हें पसंद नही? अरी पाषाणहृदय! क्या तुझे इस अंकिचन पर तनिक भी दया नहीं आती? क्या तुम्हें मुझसे प्यार नहीं? उत्तर में उसने कुछ नहीं कहा। सिर्फ़ आँखों से कुछ अश्रुबिंदु ढुलककर उसके कपोलों पर आ गए।

"रो क्यों रही है पगली! मैं तुझे राजरानी बनाकर ले जाऊँगा और जीवन भर आँखों में बिठाए रखूँगा।" फिर तो बिट्टी छुड़ाने की चेष्टा भूलकर बुरी तरह से मुझसे लिपट गई। उसकी आँखों में मैंने संतोष के भाव देखे। बीच-बीच में मैं उसके केशों में उँगलियाँ डालकर केश-क्रीड़ा भी कर रहा था।

"बिट्टी! अब मेरे साथ आम के बगीचे में नहीं चलोगी? कास का छप्पर नहीं बनाओगी?"

"नहीं! अब हम बड़े हो गए हैं।" बिट्टी मुस्कुराती हुई बोली।

"अच्छा! इसीलिए मुझे देखकर भागी जा रही थी।"

"और क्या! छोड़ो मुझे, अब मैं जाऊँगी।"

"कल मैं घर लौट जाऊँगा, तुम्हें देखने के लिए ही यहाँ आया था, पता है

या नहीं?" मैंने प्यार उड़ेलते हुए कहा। बिना कुछ कहे विट्टी ने सिर हिलाकर हामी भरी।

"मामी आ रही है...।" यह कहकर मुझे चकमा देती हुई विट्टी पुनः भाग गई। उस रात किसी भी तरह मुझे नींद नहीं आई। आँखों में प्रतीक्षा, हृदय में उत्कंठा तथा पाँवों में कूर्म-गति लिए सुबह ही उठकर मैंने किसी तरह मामा के घर से अपने गाँव की ओर पग बढ़ाया।

उसी साल गर्मी की छुट्टी में किसी ने बताया कि करुणा का विवाह हो गया किसी के साथ। उसके दादा ने मुझे निर्धन एवं भूमिहीन कहकर किसी धनाढ्य परिवार में उसका विवाह कर दिया था। यह सुनकर ही मैं जड़कटे पेड़ की भाँति पलंग पर गिरा कर। करुणा में डूबकर कब तक रोता रहा मूर्च्छाग्रस्त मैं स्वयं यह नहीं जान पाया। माँ ने मुझे वार-वार ढाँढस वँधाया। पागल की तरह, ठगे एवं मूढ़ की तरह, इधर-उधर भटकता रहा कुछ दिन गाँव में और फिर मन मारकर प्रयाग लौट आया।

अब मैं वत्तीस वर्ष का हूँ। बीच में चौदह वर्ष बीत गए। और तभी अचानक मुझे पुनः विट्टी मिल गई, अपने ही घर में। पर हृदयेश्वरी के रूप में नहीं, एक सेवक की पत्नी के रूप में। हे प्रभु! तुम भी कितने पाषाण-हृदय हो?

कव कमिश्नर साहव आए, उन्होंने क्या कहा, क्या किया और कव वापस गए, मुझे किसी वात का होश न रहा। दिन भर रोवोट की तरह चलता रहा।

रात्रि में निश्चिंत हो सो नहीं पाया। प्रभावती ने कई बार पूछा—सर में दर्द हो रहा है क्या? लाओ, थोड़ा सा हिमकल्याण तेल मल दूँ? बिना कोई उत्तर दिए पत्नी को अपनी वाँहों में लेते हुए मैंने पूरी कथा आद्योपांत कह सुनाई। फिर संकोच छोड़ते हुए पूछ वैठा।

प्रभा, अब एक वात वतलाओ। जो प्रेम लोकवाधा अथवा वुजुर्गों की हठधर्मिता के कारण हम दोनों के वीच फलित न हुआ, वही प्रेम यदि बच्चों के द्वारा फलित हो जाए तो? तुम्हारी क्या राय है?

"अव पहेली मत वुझाओ, साफ-साफ़ वताओ।"

"प्रभावती! तुम वंशीधर की वेटी को तो वहुत प्यार करती हो। उसके रूप और गुण की प्रशंसा भी करती हो। क्या तुम उसे अपनी वहू नहीं वनाना चाहोगी?"

हर्षोत्फुल्ल नेत्रों वाली प्रभावती वोली—आप तो मेरे ही मन की इच्छा कह रहे हैं। मन-सिंधु को मथकर आपने मुक्तामणि लाना कहाँ से सीखा है? चूँकि

वंशी अपना नौकर है, इसीलिए संकोचवश मैं यह प्रस्ताव आपके समक्ष न ला सकी।

मैंने प्रभावती को वाँहों में समेटकर कई चुंवन उसके गालों पर टकेर दिए और हँसते हुए वोला—रानी! भाग्य का खेल तो देखो!

मुझे निर्धन समझकर विट्टी के दादा ने उसे अन्यत्र व्याह दिया। परंतु उसकी वेटी को निर्धन मानकर भी मैं उसे अपनी पुत्रवधू वना रहा हूँ। मेरे इस उद्‌गार से गद्‌गद प्रभा अत्यंत खुशी से मेरे गाल पर चिकोटी काटती हुई व्यंगस्वर में वोली—सुनो जी! पुत्रवधू की आड़ में कहीं अपनी विट्टी से दुवारा तो लाड़ नहीं लगाने लगोगे?

□□□